सुख दुःख से परे

*

छोड़ो इन गुलामियों को, अपनी कमजोरियों को !
अपने जीवन में निर्भयता लाओ, प्रसन्न रहो ।
इन बाहरी सहारों में सुख मत ढूँढ़ो ।

*

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरा ० साबरमती ० अहमदाबाद

प्रकाशक :
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरा गाँव (जि. गांधीनगर) गुजरात

प्रथम आवृत्ति : १९७७
श्री गुरुपूर्णिमा महोत्सव

Rs 1 - 5 d

मुद्रक :
रतिलाल अंबालाल पटेल,
अक्षर प्रेस,
११, आशिष इन्ड. अेस्टेट, नागरवेल हनुमान रोड,
रखियाल, अहमदाबाद-२३.

※ अनुक्रमणिका ※

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	अपना आचरण वेदान्ती बनाओ	१
२.	हम निष्काम कर्म करें	१७
३.	संत शरण जाईये	२६
४.	और सभी दुःखों से पार हो जाएँ	३५
५.	दीपावली कैसे मनाएँ	५१
६.	यह सब झूठा संसार है	६१
७.	पाद – पश्चिमोत्तानासन	६७
८.	आसन से लाभ	६८
९.	अनेकत्व में छिपे एकत्व को पहचानें	६९
१०.	सूक्तियाँ	७४

संत श्री आशारामजी महाराज की दिव्य-वाणी के अन्य अमृत–रत्न

१	सहजवाणी भाग–१	हिन्दी	०–२०
२	,, २	,,	०–५०
३	,, ३	,,	०–७०
४	,, ४	,,	०–७०
५	,, ५	,,	१–२५
६	,, ६	,,	१–२५
७	दिव्य जीवन की ओर	,,	०–६०
८	नारी–धर्म	,,	०–५०
९	आनन्द का स्रोत	,,	०–३०
१०	संत–वाणी (पद्य)	,,	
११	योगलीला (पूज्य श्री की जीवन झलक)	गुजराती	२–२५
१२	सत्संग–सरिता	,,	०–५०
१३	व्यसन ना व्याधि (संतश्री लीलीशाह का व्यसन–मुक्ति संदेश)	,,	०–२५
१४	अमी झरना	,,	०–३०
१५	संतवाणी	,,	०–२०
१६	मादक पदार्थों थी सावधान	,,	०–२०
१७	वास्तविक जीवननो राह (प्रेसमें)	,,	
१८	ब्रह्म–बावनी (वेदांत पर)	,,	
१९	सहजवाणी भाग–१	सिंधी	०–२५

अन्य साहित्य

२०	भजनमाला	सिंधी	०–२५
२१	सुखमणी	,,	४–००
२२	भगवद्–गीता	,,	३–००

ॐ

अपना आचरण वेदान्ती बनाओ

स्वामी श्री ककुराम मंदिर, भावनगर
२५–२–'७७
रात्रि १० बजे

दि० १८ से २५ फेब्रुआरी तक पू. स्वामीजी के अमृतवचनों का धारा–प्रवाह पावन लाभ भावनगर के धर्मपिपासु भक्त लोगों को प्राप्त हो रहा है। लगभग महीने भर पूर्व से ही इधर स्वामीजी का प्रवचन कार्यक्रम यहाँ के उत्साही कार्यकर्ताओं ने तय करा रखा था। आज कार्यक्रम का समापन समारोह है।

कुछ भजन सेवक जयसिंहानी ने अभी–अभी गाए हैं। वातावरण बड़ा ही शांत एवं पवित्र बन चुका है। जितना शामियाना लगा है, वह भक्त लोगों की उपस्थिति में बहुत छोटा पड रहा है। रंगबिरंगे विद्युत बल्बों के प्रकाश से सारा स्थान जगमगा रहा है। हजारों श्रोताओं की नजर एवं कान सामने ही अद्भुत रीति से सजाए हुए मंच पर बिराजमान् पूज्य स्वामीजी की ओर लगे हुए हैं।

स्वामीजी—

पाप का फल दुःख है और पुण्य का फल सुख है। व्यक्ति सुख चाहता है, मगर सुख भी आने जाने वाला है, अतः वह भी नश्वर है; इसलिये

उससे भी वह तृप्त नहीं होता। सुख दुःख दोनों ही कर्म के अधीन हैं। हर कर्म दोषपूर्ण है। जब तक व्यक्ति सकाम कर्म करेगा, तब तक उसे फल भी मिलेगा। भले वह अच्छा हो अथवा बुरा जन्म–मरण के चक्कर से तो नहीं छुड़ा सकेगा।

व्यक्ति शाश्वत् सुख चाहता है और वह तो आत्मपद की स्थिति में ही संभव है। जब तक स्थिति नहीं हुई है, तब तक वह समझपूर्वक निर्लेप होकर कर्म करके अपना जीवन सरल एवं राग–द्वेष रहित बनाए रखने का प्रयास करे। धीरे–धीरे अंतःकरण शुद्ध होगा और वह आनन्द की तरफ बढ़ेगा।

राजा भोज के जमाने की बात है। उसका एक वजीर था। उसे राजा ने ४ प्रश्न पूछे–

१. है–है–है।
२. है–है–नहीं।
३. नहीं–नहीं–है।
४. नहीं–नहीं–नहीं।

प्रश्न बड़े विचित्र थे। किसी शास्त्र में उसका हवाला नहीं मिलता था। अब वजीर बड़ा परेशान! उसने मुहलत मांगी उत्तर ढूँढने की। उसका उदास चेहरा देखा उसकी लड़की ने। वह समझ गई कि कोई समस्या पिताजी को अन्दर ही अन्दर परेशान किये हुए है।

लड़की रोज सबेरे ध्यान करती थी। ध्यान करने से बुद्धि तीक्ष्ण होती है। पवित्र भावों में वृद्धि होती है और आत्मोत्थान होता है।

उसने पिताजी को उसकी उदासी का कारण पूछा। पिताजी ने देखा कि इस नादान को क्या बताएँ। मगर हाँ–ना करके अंत में बताना ही पड़ा। लडकी ने ध्यान किया तो उसे कुछ प्रेरणा हुई।

वह निर्भय थी। उसने पिताजी की हिम्मत बढाई। पुण्य का फल है निर्भयता। पाप का फल है भय। ध्यान करने से निर्भयता आती है। आत्मा में स्थित व्यक्ति निर्भय होता है। आत्मभाव में स्थित व्यक्ति कुछ भी करे उसे कोई पाप नहीं है। भले वह हजारों को काट देवे, उसे कोई लेप नहीं। यही बात श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता में बताई है।

तो तुम कुछ भी करो, मगर अपने आपको पहले जान लो, फिर तुम्हें दुनिया का कोई कर्म नहीं बांध सकेगा। और **बिना अपने आपको जाने आप कैसे भी पुण्य कर्म कर लें, मगर जन्म-मरण के चक्कर से नहीं छूट सकते। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होगी।**

और इस सबके लिये अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहिये। इसके लिये आहार-विहार शुद्ध होना चाहिये। कुछ लोग घर पर मेहमानों को खुश करने के लिये मांस–दारु का उपयोग करते हैं। कहते हैं–मेहमान हैं, ऐसी खातिरदारी नहीं करेंगे तो वे नाराज हो जाएंगे। अरे वे तो नाराज होंगे, पर तुम्हारा तो सारा जीवन ही तुमसे नाराज हो जायेगा यह तुम्हें ख्याल में नहीं आता? कब तक लोगों के कहने में जीते रहोगे? जन्मों–जन्मों से भटकते आ रहे हो। फिर संतों के आगे आकर हम रोते हैं–क्या करूँ महाराज? बहुत दुःखी हूँ...,और दुःख के कारण हम खुद ही बढ़ाते चले जाते हैं।

मांस–शराब तमोगुणी भोजन है। इसके व्यवहार से भाव अशुद्ध बनते हैं। भावों से ही सारा जीवन का व्यवहार बनता है। हमारा सारा जीवन ही एक खराब तमोगुणी दिशा पकड़ लेता है। फिर हमें सुख की झलक भी दुर्लभ हो जाती है।

मांस मांस सब एक है, हिरनी बकरी गाय।
आँख देख नर खात है, निश्चय नरक में जाय॥

नानक साहब ने भी कहा है :

जो रत्त लगे कपडा जामा होत पलीत ।
सो रत्त पीवे मानखा, ताको कैसे निर्मल चित्त ॥

फिर हम आशा करें कि हमारे घरमें सुख की वर्षा हो! कहाँ से होगी ? हम मांस के व्यवहार से अपना और मेहमान दोनों का ही अकल्याण करते हैं और ऊपर से सोचते हैं, मेहमान की खातिरदारी करते हैं । कैसी विचित्रता है !

शराब से भी कई बिमारियाँ उत्पन्न होती हैं । शराब से मस्तिष्क के ज्ञानतंतु कमजोर हो जाते हैं । स्मरण-शक्ति को गहरा धक्का लगता है । नशे के कारण थोड़ी देर के लिये लगता है सभी चिन्ताएँ खत्म हो गई । मगर सुबह उठने के साथ ही पुनः चिंताओंका भूत उससे भी बड़ा आकर सामने खड़ा नजर आता है । यह सब अपने को ही हम धोखा देते हैं और दुःखी होते हैं ।

बीडी–सिगेरट का नशा भी हमें दुःख की तरफ ही धकेलता है। कहते हैं, तम्बाकू का नशा आनेवाली १० पीढ़ियों तकको अपना बुरा असर देता रहता है ।

फिर भी हम इन नशों के गुलाम बनते रहते हैं । छोड़ो इन गुलामियों को–अपनी इन कमजोरियों को ! अपने जीवन में वेदान्त लाओ। निर्भयता लाओ । प्रसन्न रहो । इन बाहरी सहारों में सुख मत ढूँढो। अपने अन्दर देखो । देखो कि अपना आप हमारा आत्मदेव शाश्वत् सुख का भन्डार हर समय चमक रहा है । उसका सहारा लें । बाकी नश्वर सहारों को छोड़ो । अपने आप को जानो ।

तो वह लड़की अपने जीवन में वेदान्त को जगह दिये हुए थी। उसका जीवन वेदान्ती था । वह ध्यान करती थी । और उससे उसे

प्रेरणा हुई कि उसे क्या करना चाहिये ? कैसे अपने पिता की समस्या को हल करना चाहिये ?

उसने रथ तैयार करवाया और पिताजी को साथ लेकर सुबह ही सुबह घर से निकल पड़ी। थोड़ी ही दूर पिता-पुत्री गये थे कि रास्ते में एक सेठ प्रसन्नवदन किसी आत्मनिष्ठ संत की कुटीर से अपने घर की ओर लौटता हुआ नजर आया ।

लड़की ने पिताजी से पूछा—"यह कौन है पिताजी ?"

वजीर ने कहा–बेटी ! यह नगर सेठ है। बड़ा धर्मात्मा है । इसका जीवन बड़ा सादा एवं निर्दोष है।

सच्चा भगवान का भक्त मिलना कठिन है। आऽऽआऽऽकरके एक हाथ कान पर और दूसरा हाथ सामने लम्बा करके अपना साढ़े तीन इंच का मुंह फाड़ कर पूरे गले से स्वर आलापने वाले तो बहुत मिल जाएंगे, मगर सच्चे भगत नहीं मिलते ।

"भगत जगत को ठगत है, भगत को ठगे न कोई ।
एक बार जो भगत ठगे तो अखण्ड यज्ञ फल होई ॥"

सच्चे भगत को माया नहीं पहुँच सकती। ऐसा भगत जगत को ठगता है (जगत में रहते हुए अपने चित्त पर जगत का लेप नहीं लगने देता है)। ऐसे भगत को जो ठग ले यानि उसे अपनी सेवा से प्रसन्न कर ले तो अखंड यज्ञ का फल उसे प्राप्त होता है, अर्थात् अखण्ड आनन्द मिल जाता है—जहाँ कोई क्षय नहीं है ।

तो उस लड़की ने पिताजी से कहलाकर उस नगर सेठ को अपने रथ में बिठा लिया।

कुछ आगे चले तो एक आलीशान कोठी में से पायलों की रुन–झुन व तबलों की आवाजें आती सुनाई पड़ी ।

बेटी ने पूछा—"पिताजी यह क्या...?"

वजीर बोला "बेटी! यहाँ सेठ का लडका राग रंग और नृत्यगान में मस्त है। वह बहुत विलासी है और क्रोधी है।"

इतने में वह लड़का बाहर आता हुआ नजर आया।

लड़कीने कहा, "पिताजी इसे साथ ले चलो।"

वजीर बोला, "क्या करेंगे बेटी? ऐसों का तो मुँह देखना भी पाप है।"

मगर लड़कीने कहा, "आप मेरी बात तो मानिये।" वजीर ने जैसे-तैसे उस लड़के को भी भय आदि दिखाकर अपने रथ में बिठा लिया।

और आगे चले तो सबकी नजर एकान्त में एक पेड़ के नीचे ध्यानस्थ बैठे एक महात्मा पर पड़ी। उनके मुख पर तपस्या का तेज झलक रहा था। उसे देखते ही लड़की ने कहा—"पिताजी, इन महात्मा को भी साथ ले लें।"

वजीर बोले—"बेटी तुम नहीं जानती ये संत हैं। ये मर्जी के मालिक होते हैं। ये नहीं चलेंगे।"

लड़की बोली—"मगर पिताजी! कैसे भी हो इनको साथ ले लीजिये।"

लड़की का हठ देखकर वजीर उन महात्मा के पास गया और नम्रता से अपना सिर झुकाकर प्रणाम किया।

नम्रता से क्या नहीं हो सकता? नम्रता बहुत बड़ा गुण है। नम्रता से शत्रु का हृदय भी जीता जा सकता है। मगर हम नम्र नहीं बनना जानते। अपना अहंकार नहीं छोडना चाहते। हर समय

अपनी अकड़ बनाए रखते हैं कि मैं कुछ हूँ। इसी कारण हम जो हैं उससे अधिक आगे नहीं बढ़ पाते। हम अधिक गुण नहीं ले पाते।

कुछ लोग सन्तों के आगे भी नहीं झुकना चाहते। झुकते भी हैं तो शरीर से झुकते हैं, मगर अन्दर का अहंकार यों का यों सीधा खड़ा रहता है। यदि कोई अन्दर से भी झुक जाय-पूर्णतया, अपने आपको सच्चे सन्त को समर्पित कर दें, मिट जायें तो उसे कुछ भी करना बाकी नहीं रहता। उसका आनन्द का खजाना खुल जाता है।

मगर हम झुकते नहीं हैं। हममें सच्ची नम्रता जगती नहीं है। यदि जगती भी है तो किसी न किसी संसारी तुच्छ स्वार्थ के लिये, बस! उससे आगे नहीं।

तो वजीर ने उन महात्मा से झुककर नम्रतापूर्वक निवेदन किया—

'महाराज! आप जैसे महापुरुषों के पुण्य से ही इस पृथ्वी पर धन्य-धान्य और रस टिका है। आपके हर श्वास से प्राणीमात्र का कल्याण हो रहा है। जब हमारे जैसे संसारी-व्यवहारियों को कुछ भी रास्ता नहीं सूझता और परेशान हो जाते हैं, तब आप जैसे महापुरुषों की छाया ही वट वृक्ष की तरह हमारे हृदय में सुख शांति का संचार करती है।...आपको तो महाराज कहीं आना जाना है नहीं। ऐसी जगह कहीं नहीं है, जहाँ आप न हो। आप ब्रह्म स्वरुप हैं।...महाराज एक कृपा करें। आज आप हमारे साथ थोड़े समय के लिये राजमहल पधारें। रथ आपके लिये तैयार खड़ा हैं। इतनी हमारी प्रार्थना आप स्वीकार करें...।"

नम्रता में बड़ी ताकत है। जहाँ डंडा काम नहीं देता, जहाँ पैसा काम नहीं देता, जहाँ कायदा लाचार पड़ जाता है वहाँ नम्रता काम दे जाती है। बडे मीठे शब्द वजीर के नम्रता से बोले गए काम दे गए।

वाणी ऐसी बोलिये, मन का आपा खोय ।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय ॥

अपनी वाणी में ऐसी मिठास हो कि दूसरों का ह्रदय भी शीतल हो और हमारा ह्रदय भी शीतल हो। कुछ लोग बोलना नहीं जानते। अच्छी से अच्छी बात को भी ऐसी वाणी में बोल जाते हैं कि बनता हुआ काम भी उनका बिगड़ जाता है। इसलिये क्या बोलना, कैसा बोलना, कितना बोलना, किस वक्त बोलना यह भी एक कला है।

तो नम्रता और वाणी की मिठास ने वजीर को सफलता दी और महात्मा भी मंथर गति से चलकर रथ में आ बिराजमान हुए।

सबको लिये हुए रथ और आगे चल पड़ा। जब नगर की सीमा समाप्त होने लगी तो सबने देखा कि एक तालाब के किनारे एक मच्छीमार बैठा मछलियाँ पकड़ रहा है।

कहाँ तो सुबह की ताजी शुद्ध हवा, अरुण सूर्य की ताजी धूप, स्वास्थ्य के लिये परम पवित्र वातावरण जिसमें व्यक्ति के तन मन दोनों ही शुद्ध हो सकते हैं और चाहें तो ध्यान करके लोग भगवान से डोर लगा सकते हैं; और कहाँ यह मछलीमार मछलियाँ मार कर पाप अर्जन कर रहा है!

यह भी कोई उल्टे काम करने वाला भोजू ही होगा।

एक था भोजू। वह कुछ उल्टे ही काम किया करता था। लोग उसे भोजू ही कहा करते थे। ध्यान से सुनना हो! यह गप्प हो अथवा सच हो, इसमें गहरा अर्थ छिपा है।

तो भोजू ने अपने ४ मित्रों को साथ लेकर नशा किया और घर की ओर लौट रहे थे तो रास्ते में प्यास लगी। रास्ते में कुआ भी दिखाई पड़ गया। भोजू ने अपने मित्रों को कहा –

"यारों! किधर देख रहे हो? यह रहा कुआ तो! आओ, जरा पानी पी लें।"

पाँचों मित्र पहुँचे कुए के पास। मगर भोजू तो भोजू ही था। उसने ऊपर देखा, आकाश में सूरज तप रहा है। धरती पर देखा, नीचे पैर जल रहे हैं। कुछ सोचा और बोला—

यारों! क्या देख रहे हो? कुछ पुरुषार्थ करना चाहिये। कुआ कितनी देर से धूप में पड़ा है। इसका पानी तो बहुत गर्म होगा। हम पाँच हैं। सभी लगाओ जोर और इसको धकेल कर छाया में कर लो। फिर इसका पानी थोडा ठंडा हो जायेगा, तब पियेंगे।

(लोग सुनते–सुनते हंस पडे हैं।)

अब, भोजू तो भोजू ही था। उसके यार फिर उससे कम क्यों होंगे! पाँचों ने अपना सिर टिका दिया कुए की दीवाल से और लगाया जोर।

मगर अन्दर के नशे ने भी जोर किया और पाँचों वहीं ढेरी हो गए।

चार–पाँच घंटे बीते! कुए पर छाया आ गई! इतने में भोजू का नशा जरा हल्का पड़ा। उसने आँखे खोली तो देखा कुआ छाया में...! तुरन्त जोर से बोला "यारों, बस करो बस! ज्यादा जोर मत लगाना। कुआ छाया में आ गया है। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे ज्यादा जोर लगाने से पुनः धूप में चला जाय।"

(सभी ठहाका मार कर हँस पड़े हैं। हँसी काफी देर तक गूंजती रहती है।)

स्वामीजी :

हमें हँसी आ रही है भोजूकी कारस्तानी पर । मगर यह न भूलें कि हम भी भोजू बने हुए जीते हैं । भोजू सोचता है नशे में कि हमारे जोर लगाने से कुआ छाया में आता है और हम भी एक तरह के नशे से मोहित हुए जीते हैं । हम भी यही सोचते हैं कि यह मिले तो सुख होगा, वह मिले तो सुख होगा । ऐसा करें तो, वैसा करें तो, सुन्दर पत्नी मिले तो, बेटा मिलें तो, परमोशन मिले तो, एक की दो दुकानें बनें तो, झोंपडी का बंगला बने तो, हजार का लाख बने तो, क्लार्क से कलेक्टर बने तो, मामलतदार से मिनिष्टर बने तो–यानि कुछ न कुछ बनें तो सुख होगा । उसी सुख की आस में दौड़ते रहते हैं–जीवनभर । कभी यह दौड़, यह नश्वर सुखों के पीछे की दौड़ समाप्त नहीं होती । जन्म–जन्मांतरों से यही दौड़ चल रही है । बचपन से बुढ़ापे तक उसी दौड में हम लगे हुए हैं और कभी कोई संत सचेत करते हैं कि 'अरे ! जरा सुनो तो ! तुम कहाँ भागे जा रहे हो ?' हम तुमको तुम्हारी मंजिल बता देते हैं । जरा सत्संग करो..., तो हम रुकते नहीं और कहते हैं, "अभी नहीं । अभी तो हम जल्दी में है । अभी हमें सत्संग सुनने की फुर्सत नहीं है । अभी तो यह काम है, वह काम है । बेटों को काम पर लगा लें, दूसरों का हित कर लें...।"

अरे, किसका हित करोगे ? तुम अपने आपको ही नहीं जानते और दूसरों का हित करने चले हो ! जरा रुको, ठंडे दिमाग से सोचो कि हम दुनियाँ में क्यों आये हैं ? क्या करने के लिये आए हैं और क्या करते जा रहे हैं ? जो कुछ संग्रह करते जा रहे हैं, क्या वह हमेशा रहने वाला है ? क्या यह यौवन, यह धनसम्पदा, ये सम्बंधी, ये मित्र, ये कार–बंगले, यह प्रतिष्ठा सदैव बनी रहने वाली है ? फिर क्यों न इनके होते हुए उस शाश्वत् को, उस अपने आनन्द के भण्डार अपने चैतन स्वरूप आत्मदेव को जान लें, जिसको जानने के बाद सारी

दुःखपूर्ण दौड़ें ही समाप्त हो जाती हैं । अन्यथा जैसे आये थे, वैसे ही रह जाएंगे । फिर किसी मां के गर्भ में उल्टा लटकना पड़ेगा । इसलिये संत कहते हैं–चेतो !

"अरे गाफिल न समझा था, मिला था तन रतन तुझको।
मिलाया खाक में तूने, ए सजन, क्या कहूँ तुझको ।
शाही और गदाई क्या, कफन किस्मत में आखिर ।
मिले या ना खबर पुख्ता पे वतन और कफन तुझको ।"

इसलिये गाफिल मत बनो । पुरुषार्थ करना है तो इन नश्वर वस्तुओं के लिये क्या करना ? ये तो प्रारब्ध के अनुसार मिलने ही वाली है । पुरुषार्थ करना है तो शाश्वत के लिये करो, अन्यथा हम भी भोजू ही रह जाएंगे । भोजू सोचता है कि हम कुए को छाया में लाए जब कि छाया अपने आप ही कुए पर आई थी । और ऐसे ही हम सोचते हैं कि हमने ये किया, वह किया, यह बनाया, वह बनाया जब कि समय के साथ ये सब तो मिलेंगे ही और नाश भी हो जायेंगे । तो भोजू की तरह मोह रूपी नशे में वही मत करते जाओ कि बाद में पछताना पड़े । वह करो कि जिसके बाद सारी दौड़ समाप्त हो जाय । अपने मोह और आसक्ति के नशे से जाग जाओ ।

तो वह मच्छीमार भी सुबह ही सुबह वही कर रहा था जैसे भोजू कभी कभी किया करता था । लडकी ने उसे देखा और पिताजी को कहा कि इसको भी साथ ले चलो, इसकी भी जरुरत है ।

मच्छीमार को भी साथ ले लिया गया ।

सभी राजभवन में पहुँचे । दरबार भरा हुआ था । अब इनके पहुँचते ही राजसभा धर्मसभा बन गई, क्योंकि इनके साथ संत भी थे । आप देखें कि अभी आप कितने शांत बने हुए सुन रहे हैं । कितने

सात्विक वातावरण में हम सब आध्यात्मिक लाभ ले रहे हैं। और इसी मंच पर कोई नट नटिनयाँ अथवा कोई ताकड़धिन्ना वाले लोग आ जाए तो...। तो स्टेज का व सभा का रंग ही बदल जाता।

(हंसी)

जहा संत हैं वहाँ प्रेममय वातावरण बन जाता है। मगर हम सच्चे संतों को पहचान नहीं पाते। आजकल बहुधा ढोंगी संत अधिक पूजे जाते हैं, क्योंकि वे पुजवाने का ढंग जानते हैं। सच्चे संत मान–बड़ाई से दूर रहते हैं, दुर्लभ होते है। कई बार तो पागल और भिखमंगों के वेश में होते हैं। सच्चे सत हमारे पास से भी निकल जायं, कई बार निकलते भी होंगे, मगर हम नहीं पहचान पाते, क्यों कि वे स्वयं को छुपाए रखना चाहते हैं और हमारे पास उनको पहचानने की दृष्टि नहीं होती, क्योंकि पिछले हमारे पुण्य कर्म प्रबल नहीं होते और सांसारिक वासनाओं की लम्बी लिस्ट से हम हमारे मन को सदैव लादे हुए फिरते हैं।

और सच्चे संत हमारे सामने भी आजाय तो भी हम उन्हें नहीं देख पाते! हम उनके कपड़े देख पाते हैं, हम उनकी देह देख पाते हैं, हम उनकी दाढ़ी पाते हैं उन्हें नहीं देख पाते, क्योंकि हम हर चीज को चमड़े की आँख से ही देखने के अभ्यस्त हैं! और चमड़े की आँख की शक्ति सीमित हैं! वह संत का संतत्व नहीं देख सकती!

राजा जनक जैसे महाराजा एवं उस के दरबार के धुरन्धर पंडित भी अष्टावक्र जैसे ज्ञानी महापुरुष को देखने मे धोखा खा गए थे! इसलिये ज्योंही अष्टावक्र दरबार मे आए तो सब उनके आठ स्थानों से वक्र अंगों को देखकर हँस पड़े! तो अष्टावक्र बोले–

"ऐ जनक! क्या चमारों की सभा भरकर बैठा हैं!"

सभी चौंक गए अपने को चमार सम्बोधन करते हुए सुनकर! वास्तव मे बात ठीक ही थी। सबने अष्टवक्र के चाम को–उनके शरीर को देखा था। उनका ज्ञान तत्व कोई नहीं देख पाया था।

तो ज्ञान देखना हो तो ज्ञान की आँख चाहिये। अन्तर्दृष्टि चाहिये। साधक देखना है तो साधक बनकर देखो। संत को सही अर्थों में देखना है तो हृदय संत का बनाना पड़ेगा! नहीं तो कोई लाभ नहीं ले पाओगे। उनसे पैसे, धन, बंगला, पुत्र आदि मांग लिये और मिल गये तो मत समझना कि हमने बहुत कुछ पा लिया! अरे, असली माल तो अन्दर है! ये तो गुड का बारदाना है, टाट है! गुड़ तो अन्दर है!

जिसने संत को देख लिया उसने समझो सब कुछ देख लिया। उसे कुछ भी देखना बाकी नहीं रहा। ईसीलिये नानक साहब ने कहा है.

'संत का दर्शन बडभागी पावे।'

तो राजसभा धर्मसभा बन गई! वजीर–पुत्री ने राजा से निवेदन किया कि–महाराज! यदि आज्ञा करें तो आपके प्रश्नों का उत्तर मेरे पिताजी की बजाय मैं ही दे दूँ! और प्रत्यक्ष में प्रमाण सहित दूँ, सैद्धांतिक नहीं।

राजा ने प्रसन्नतापूर्वक उस बाला को अनुमति दी। सभी की आँखें एवं कान वजीर–पुत्री की ओर लग गए।

वजीर–पुत्री ने सबसे पहले सेठ की ओर इशारा किया और बोली—

"महाराज! यह सेठ आप के प्रथम प्रश्न का जवाब है। आप पूछेंगे–कैसे, तो सुनो! इन्होंने अगले जन्मों में पुण्य कर्म किये हैं इस लिये इस समय वर्तमान मे सेठ हैं। करोडों की सम्पत्ति के मालिक

हैं। अभी ये केवल मौज नहीं करते, दान पुण्य आदि भी करते हैं, भगवद् चिन्तन अभी भी इनका चालू है। इस लिये वर्तमान भी इनका सुखपूर्ण है व इस कारण भविष्य भी उज्ज्वल है; यानि भूत, वर्तमान और भविष्य में तीनों कालों में इनका सौभाग्य—है है है।"

"अब इस लडके की ओर देखें। यह आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर है!" लड़की ने सेठ पुत्र की ओर अंगुली निर्देश करते हुए कहा—"इसने अगले जन्मों में पुण्य कर्म किये हैं, इसलिये आज यह ऐश-आराम कर रहा है, गुलछर्रे उड़ा रहा है। मगर शुभ कर्म नहीं कर रहा इसलिए भविष्य इसका उज्जवल नहीं! यानि यह—है है नहीं। भूतकाल सुन्दर रहा है, वर्तमानकाल में भी सुख के साधन हैं और भविष्य में नहीं।"

अब वजीर पुत्री ने बड़े आदर से उन महात्मा की ओर निहारा और बोली—

"अब आप पूज्य संत की ओर निहारिये। इनके पहले के कर्म सुख सुविधा देने वाले नहीं हैं, इसलिये अभी भी इनको सुख के साधन उपलब्ध नहीं; लेकिन अभी ये परम तत्व की ओर अग्रसर हो रहे हैं इसलिये आईन्दा (भविष्य) इनका बड़ा आकर्षक व उज्ज्वल है। अर्थात ये तीसरे प्रश्न के उत्तर के प्रतीक हैं, यानि—नहीं नहीं है"

राजा सहित सभी दरबारी बड़े ध्यान से प्रमाण सहित वजीर पुत्री के समझपूर्वक दिये गये उत्तरों को सुन रहे थे।

अब वजीर पुत्री ने चौथे—मच्छीमार की ओर इशारा करते हुए कहा—"महाराज! यह आप के चौथे प्रश्न का ज्वलंत उत्तर है। इसने पूर्व जन्म में कोई पुण्य कर्म नहीं किया, इसलिये आज यह निर्धन है! अभी

भी कोई पुण्य कर्म नहीं करता। खाली मछली मारता है। क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये इसकी भी यह कोई चिन्ता नहीं करता। अर्थात इसने पहले कुछ अच्छा किया नहीं, अभी भी कुछ अच्छा करता नहीं अतः सुख पाता नहीं, इसलिये भविष्य भी इसका कुछ उज्ज्वल नहीं। यानि—नहीं नहीं नहीं।

राजा ने वजीर पुत्री के बुद्धि कौशल्य की बडी सराहना की। मगर वह जानती थी कि यह सब चमत्कार उसका नहीं बल्कि उसके ध्यान आदि सात्विक कर्मो से युक्त वेदान्ती जीवन का है।

तो हम विचार करें कि किस प्रकार हमारा जीवन सफल हो। हम क्या करें कि हमारा जीवन सरल बने, निर्दोष बने। उसमे सत्संग का महत्वपूर्ण स्थान है। हम सात्विक कर्म करें।

सत्संग से हमारी बुद्धि निर्मल होती है। क्या करना और क्या नहीं करना चाहिये यह समझ हम में पैदा होती है। शाश्वत् क्या है और नाशवान् क्या है इस की समझ पैदा होती है। सुख क्या है और आनंद क्या है इसका भेद समझमें आता है। यह जीवन किसलिये मिला है और इसको खर्च करने में गलती कहाँ हो रही है यह समझ में आता है। और यह समझ में आना बहुत मूल्यवान् है। यह समझ में आ गया तो हमारी दौड नश्वर की बजाय शाश्वत् की ओर मुड जायेगी। जहाँ से सच्चा आनन्द आता है उस हमारे अपने ही आत्मदेव को जानने की ओर हमारी वृत्ति बन जायेगी। हम अपनी सारी शक्तियाँ उसी ओर लगा देंगे। हमे संसार की नश्वरता समझ में आने लगेगी और शाश्वत का आनन्द मिलना प्रारंभ हो जायेगा। फिर हमें दुनियाँ के दुःख परेशान नहीं कर सकेंगे, दुनिया के सुख भी चलायमान् नहीं कर सकेंगे। हम सदैव आनन्द में रहेंगे। फिर आनन्द के लिये बाहर के किसी साधन के सहारे की आवश्यकता नहीं रहेगी। हम देह—भाव से, जीव—भाव से, सुख—दुःख से ऊपर उठकर जल में कमलवत् इस संसार में व्यवहार कर

सकेंगे। संसार में रहेंगे, मगर संसार के सुख–दुःख हमें प्रभावित नहीं कर सकेंगे। यह सब तब होगा जब हम अपने आत्मदेव को जान लेंगे। जब हम आत्म–साक्षात्कार कर लेंगे। और यह सत्संग से, ध्यान करने से, तत्वनिष्ठ महापुरुषों के सान्निध्य और आज्ञा–निर्देश मे चलने से होता है।

संसार के सभी दुःखों से छूटने का यही एक उपाय है। अपने आप को जानो। और कोई उपाय नहीं है। नान्य : पंथा विद्यतेऽयनाय। अतः वही करो जो इस रास्ते में आगे बढावें।

ॐ ॐ ॐ

ॐ

हम निष्काम कर्म करें

१०–७–७६
शनिवार

"किसी न किसी स्वार्थ से ही सभी कार्य करते हैं। पुत्र–धन–यश–सत्ता आदि के लिये तो सब दौडते हैं। उस के लिये अपने को सभी लगा देते हैं, परन्तु बिना स्वार्थ के कोई कार्य नहीं करता। वस्तुतः बिना स्वार्थ के कार्य करने से ही जीवन जीवन बनता है। जीवन में महक आती है। जीवन जीना उसी का सार्थक बनता है जो निष्काम जीवन जीता है।"

कह कर स्वामीजी मुस्कान भरी मधुर दृष्टि से सबकी ओर देखने लगे। लेकिन यह दृष्टि केवल मधुर दृष्टि मात्र ही नहीं है। जैसे सूर्य की किरणों में सात रंग हैं, वैसे ही यह दृष्टि भी कई दृष्टियों का योग है। यह दृष्टि कईयों के हृदय की गहराई में उतरती चली जा रही है। सबको लग रहा है कि इस दृष्टि का एक रंग उनके हृदय की गहराईयों में उतर कर वह खोज–बीन कर रहा है कि तुम लोग आश्रम में जो सेवाकार्य करते हो, वह वास्तव में निर्दोष–निष्काम भाव से करते हो अथवा उसके पीछे कहीं कामनाएँ छिपी हुई हैं !

सुबह के साढे सात बजे हैं। स्वामीजी अपनी कुटिया के बाहर खडे हैं। गत रात्रि को ही स्वामीजी हिमालय, हरिद्वार, आबू आदि स्थानों में भ्रमण कर करीब तीन महीने पश्चात् आश्रम में लौटे हैं। २५–३० भक्त पूज्यश्री के सम्मुख खडे हो अमृत वचनों का पान कर रहे हैं।

स्वामीजी–मनुष्य अपने कुटुम्ब की पालना के लिये रात–दिन अथक प्रयत्न करता है। यह सब जो कर्म होता है वह मोह के कारण होता है, स्वार्थ के वशीभूत होता है; और इसी में जीवन की सारी शक्ति लग जाती है। उसके जीवन में फिर चमक कहाँ से आएगी? उसके जीवन में से परम पद की प्राप्ति की तरफ ले जाने वाला वह आत्मिक बल कहाँ से आएगा? आत्मिक बल आता है निष्काम कर्म करने से। निष्काम कर्म करके देखो, जीवन में कैसी स्फूर्ति एवं उत्साह पैदा होता है। निष्कामता से हृदय ऐसा गद्गद् होता है कि उसका वर्णन करना मुश्किल है। जिसके हृदय में निष्कामता है, जो फल की इच्छा किये बिना कर्म करता है उसके लिये सफलता असफलता बराबर है। इसीलिये उसको सफलता मिलती है। **जिसको मान की इच्छा नहीं और अपमान की परवाह नहीं, जिसके लिये मान अपमान बराबर है उसीको मान मिलता है।** जो मान चाहता है उससे मान आगे आगे भागता है। उसे मान नहीं मिलता। जो मान को नहीं चाहता उसको मान चाहता है और उसे मिल जाता है। प्रकृति के ये बडे सूक्ष्म नियम हैं। सभी को इन्हीं नियमों में से गुजरना पडता–फिर वह चाहे सेठ हों अथवा नौकर, राजा हो अथवा रंक, प्रजा हो अथवा नेता, गरीब हो अथवा अमीर; **जो सफलता की चिन्ता नहीं करते और कार्य करते जाते हैं सफलता उन्हों के चरण चूमती है।**

एक बार गीता प्रेस वालों ने कोई राहत कार्य अपने हाथ में लिया था और लोगों से कुछ धन भेजने की अपील की थी। जब धन आया और कार्य के लिये पर्याप्त समझा गया तो उन्होंने लोगों से अपील की कि कृपा करके अब पैसा नहीं भेजें। अब आवश्यकता नहीं है। इसका लोगों पर बड़ा अच्छा परिणाम हुआ। उनकी निस्वार्थ-पने और धन के प्रति से निर्मोह की लोगों में अच्छी धाक जमी। ऐसों

को ही लोग पैसे भेजते हैं। अन्य कई लोग मांगते हैं तो भी उन्हें नहीं मिल पाता। यही दुनिया की रीत है। 'बिन मांगे मोती मिले मांगे मिले न भीख।' जो निष्काम कर्म करता है और करते समय मान–अपमान की भी परवाह नहीं करता उसके सम्मुख धन–यश–वाहवाही आदि तो आते ही हैं साथ ही उसका आत्मिक–बल भी गजब का बढ़ जाता है। यह आत्मिक–बल ही ईश्वर की ओर, उस परम–पद की ओर बढने का साधन बनता है। उससे उसके अन्तःकरण की शुद्धि होगी और उसे ज्ञान होगा ही। लेकिन बहुत कम ऐसे लोग होते हैं जो निष्काम कर्म कर पाते हैं। शेष तो मोह एवं स्वार्थ के वशी-भूत हो अपने परिवार के ईर्द–गिर्द ही अपना सारा जीवन व्यर्थ खो देते हैं।

जब पुण्य उदय होता है तो मनुष्य को संतों का संग मिलता है। संतों का संग अमोघ होता है। दत्तात्रेय से प्रह्लाद कहते हैं, 'विष-पान करना कबूल करता हूँ, मगर संतों का संग छोड़ना कबूल नहीं करता।' क्योंकि विषपान से तो एक ही बार मरना पडता है, मगर संतोंका संग छूट जाय तो बार–बार जन्म–मरण के बन्धन में भटकना पड़ता है। वे लोग इस संसार में बडे भाग्यशाली हैं जो संतों के संग एवं उनकी आज्ञा में रहते हैं:

'संत की आज्ञा बड़भागी पावे' **(सुखमणी)**

हम अपने मन और बुद्धि पर भरोसा करके जीते हैं और कईबार महापुरुषों की अमुल्य आज्ञा का उल्लंघन कर जाते हैं। कभी–कभी तो उस आज्ञा का अर्थ भी अपनी मन–बुद्धि के अनुकूल लगा कर अपनी कामना की पूर्ति कर लेते हैं और यह सोचकर समाधान कर लेते हैं कि स्वामीजी ने ऐसा तो कहा था, मगर उसका भावार्थ इसप्रकार का ही होगा। बस, यहीं हम धोखा खा जाते हैं और आध्यात्मिक उत्थानका

शुभ अवसर अपने हाथ से खो देते हैं। हम अपने मन और बुद्धि के अधीन हो जाते हैं और वे हमें ऐसा भटकाते हैं कि जब फिर कोई गहरी ठोकर लगती है तब पिछली भूल का स्मरण हमको होता है और हम सम्हलते हैं, मगर सम्हलते हैं तब तक बहुत समय बीत चुका होता है।

स्वामीजी के वाक्य बहुत गंभीर हैं। लेखक को ध्यानमें आ गया है कि दो–तीन साधकों से कोई ऐसी भूल हुई है–उसी ओर स्वामीजी का संकेत है। वे साधक अभी यहाँ पर उपस्थित हैं और वे समझ भी गए हैं कि स्वामीजी का संकेत उन्हीं की ओर है। कुछ झुके हुए उनके चेहरों से यह साफ जाहिर हो रहा है कि उनको अपने द्वारा हुई भूल पर बड़ी ग्लानि हो रही है। स्वामीजी को एक एक साधक के उत्थान का कितना ख्याल रहता है! जैसे मरीज के हित के लिये–उसका बुखार उतारने के लिये डाक्टर उसको कडवी में कड़वी दवा 'कुनैन' देने में भी नहीं हिचकता, वैसे ही साधक के हित के लिये ऐसे महापुरुषों को कभी कभी कठोर भी होना पड़ता है। कहते हैं – संत बडे दयालु होते हैं, मगर यहाँ तो स्वामीजी कठोर लग रहे हैं! परन्तु यह कठोरता स्थूल दृष्टि से नजर आ रही है। यह कठोरता कठोरता नहीं है। यह कठोरता वस्तुतः संतों की परम दयालुता है। इस कठोरता के कारण ही साधक अपना उत्थान कर पाता है अन्यथा यदि साधक के दिल को ठेस न लगे, इसको ध्यानमें रख कर मोह के कारण यदि संत दयालु ही बने रहे, उसकी भूल को दरगुजर करते रहे तो साधक अपनी मन–बुद्धिके अधीन ही व्यवहार करके उन भूलोंको बार–बार दोहराता रहेगा और अपने परम दुःखमय जन्म-मरण रूपी बन्धन को कभी काट नहीं सकेगा। यह दयालुता तो उसके लिये अभिशाप बन जाएगी! इसलिये समय समय पर संत अपनी करुणावश कठोर होते हैं। यह विचारकर इस गंभीर वातावरण में भी लेखक का हृदय स्वामीजी के प्रति बड़ा गद्गद् हो रहा है।

स्वामीजी–अभी इन दिनों तो स्वामीजी हिमालय की तरफ बहुत दूर गए हुए हैं, अतः आश्रममें इन दिनों रहने की क्या आवश्यकता है; चलें, जरा घरका और दुकान का कुछ काम कर लें। घर पर ही साधना भी करते रहेंगे और जब स्वामीजी पधारेंगे तब उनकी सेवा में पुनः पहुँच जाएंगे, यह विचारकर एक–दो साधक तो घर चले गए थे। ...और संतोंको सेवा की जरुरत नहीं होती है। अपनी सेवा के लिये तो वे भगवान को भी नहीं बुलाते। वे तो तुम्हारे ही हित के लिये सेवा स्वीकार करते हैं। तुम्हारे मोह आदि को छुडाने के लिये यह सब कराते हैं, मगर तुम्हारा मन और बुद्धि इसका मनमाना अर्थ लगा-कर तुमको वह बात समझने नहीं देती और तुम्हें संसार के विषयों में घसीट लेती है। वहाँ संसार में रहकर तुम्हारा मोह का पर्दा समय पाकर और मोटा हो जाता है। तुम संतोंका सहारा लेकर उसको पतला करने का प्रयास करते हो और वह तुम्हारी मन बुद्धि के सहारे फिर मोटा हो जाता है। ऐसे यह चक्र चलता ही रहता है। कोल्हू के बैल जैसी हमारी अवस्था हो जाती है। बैल का आँखों पर पट्टी बन्धी रहती है, वह दिनभर चलता रहता है और कोल्हू चलाता रहता है, मगर जब रुककर आँखें खोले जाने पर देखता है तो अपने को वहीं का वहीं खड़ा पाता है – जहाँ से चला था। पूछो काका से, क्यों काका?

काका (सिर झुकाए हुए धीमे स्वर में) – जी स्वामीजी!

स्वामीजी (सब की ओर निहारते हुए) – मैंने दो बार इसको टेली-फोन करके बुलवाया, फिर भी यह पहुँचा नहीं।...बोलो! कैसा मोह इसको अपने कुटुम्ब व धन्धे में बढा है इन कुछ ही दिनों में! कुटुम्ब के लिये इतना करके भी क्या इसके चित्त को शान्ति मिली है?...नहीं मिली। शान्ति क्या मिले, पहले से भी यह अधिक अशान्त हो गया है। ये ही क्या...और भी ऐसे साधक है जिनका ऐसा ही हाल हुआ

है। इसका कारण क्या है? यही...अपनी मन और बुद्धि पर गुरु से भी अधिक भरोसा करके चलना।

और हाँ! प्राईम मिनिष्टर कोल करके किसी मिनिष्टर को बुलाते हैं, तो वह जाता है कि नहीं? या वह यह सोचता रहता है कि आज नहीं कल चले जाएंगे, अथवा जरा अपने काम से फुर्सत मिलने पर जाएंगे!...क्यों?

एक–नहीं जीSS, वह तुरन्त प्लेन से दिल्ली के लिये रवाना होने की कोशिश करेगा ताकि प्राईम मिनिष्टर उससे अधिक से अधिक खुश बना रहे।

स्वामीजी – प्राईम मिनिष्टर बहुत खुश हुआ तो भी क्या देगा? अधिक से अधिक ५ वर्ष की मिनिष्टरी ही न?...या और कुछ? ५ वर्ष या १० वर्ष बाद फिर क्या? पुनर्मूषको भव...। फिर थे वहीं के वहीं। तो वह नश्वर ही दे सकता है। मगर संत यदि रीझ जाय, खुश हो जाय तो...? तो फिर वह मिलता है जिसकी तुम कल्पना नहीं कर सकते! वह अनन्त फल देते हैं। वे शाश्वत् देते हैं, नश्वर नहीं। उसमें परम सुख है। उससे अधिक कोई सुख है ही नहीं। इस जीव की जन्म–जन्मान्तर की दौड वहीं समाप्त होती है। फिर उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता। ऐसा वह परम पद है!

एक सन्त के बड़े भाई हैं। वे सन्त चाहते हैं कि उनके भाई का भी कुछ कल्याण हो जाय, इसलिये उन्होंने हरिद्वार मे जो प्रसिद्ध महापुरुष हैं घाट वाले संत, आप में से कईयों ने उनके दर्शन भी किये हैं उनको उन्हें मार्ग–निर्देश करने हेतु जैसे तैसे मनाया और भाई को बुलाने के लिये तार भेजा। उस भाई का कुडुम्ब में बहुत मोह है। दुकान और घर का मोह छोडकर जैसे तैसे वह भाई वहाँ आया, मगर एेसे महापुरुष के चरणों में आकर भी वह विशेष लाभ नहीं उठा पाया।

लेखक उस भाई को अच्छी प्रकार से जानता है। करीब दस दिन पूर्व वह लेखक से भी मिला था तब उसने बताया था कि तार आया है हरिद्वार जाने का। घर में दो बच्चे बीमार हैं फिर भी जाना तो पडेगा ही, नहीं तो भाई नाराज हो जायेगा।

ॐ

लेखक को विचार आता है कि यह तो इन भाई के लिये घर आई गंगा जैसा है। फिर भी ये मौका चूक गए और इसके महत्व को इन्होंने नहीं समझा तो उसे डर है कि वे भाई होते हुए भी कहीं बहुत बड़ी हानि में न रह जाय! और इसमें कोई आश्यर्य भी नहीं है, क्यों कि इतिहास में कई बार एेसे प्रसङ्ग बने हैं जब महापुरुष पास होते हैं तब लोग उन्हें नहीं पहचान पाते। जब वे चले जाते हैं तब लोग उनको ढूँढते हैं और उनके नाम की समाधियाँ, मन्दिर व बड़े बड़े स्मारक खड़े करते हैं। परन्तु तब तक बहुत देर हो जाती है। सुकरात को उसके समकालीन लोगों ने जहर दे दिया, लेकिन बाद में जब उनकी महानता समझ में आई तो अब उन्हीं कों याद करते हैं। एेसे ही महात्मा ईसा को क्रोस (फाँसी) पर लटका दिया और अब उनकी पूजा करके उनको ढूँढ़ते हैं।

और भी आश्चर्य की बात तो यह है कि महापुरुष के नजदीक के रिश्तेदार जिनको लाभ होना चाहिये वे ही अपनी अज्ञानता के कारण उनका कई बार लाभ नहीं उठा पाते हैं। गुरु नानक को नजदीक के लोग उन्हें 'कालु का पुत्र' ही कहकर उन्हें सामान्य व्यक्ति समझते रहे और लाभ नहीं उठा पाए जबकि अन्य दुनियाँ ने उनका लाभ उठाया। स्वामी रामतीर्थ भी अपनी पत्नी के इतने नजदीक थे परन्तु वह उन्हें नहीं समझ पाई और वैसी ही रह गई। संत तो बहुत दयालु होते हैं। वे खुले हाथों लुटाते रहते हैं ईश्वरी दौलत को; मगर 'दिया तले

अन्धेरा'—दूसरे लाभ उठा जाते हैं और नजदीक के कई बार रह जाते हैं। परमात्मा का कैसा विचित्र विधान है!

स्वामीजी – उन सन्त ने लौकिक सम्बंध की दृष्टि से लगने वाले भाई के लिये घाटवाले महाराज को बड़ा आग्रह किया कि आप इनको अपना शिष्य बना लेवें, इनका भी उद्धार हो जावें, मगर उन्होंने क्या कहा......? (एक साधकसे) तुम भी उस समय वहीं थे न?

साधक (हाथ जोड़कर)– जी स्वामीजी......! लेकिन उन्होंने तो बड़ा कड़ा जवाब दिया था। मेरे बारे में भी आपने उनको ऐसे ही कहा था कि इनको जरा उपदेश देवें, ताकि यह जरा आगे बढ़े तो वे जो बोले वह सुनकर मैं तो सन्न रह गया!

स्वामीजी – क्या बोले थे वे?

साधक – उन्होंने कहा कि आप इसकी इतनी सम्हाल क्यों लेते हैं? छोड दो इधर हरिद्वार में ही, अपने आप भटक कर ठिकाने आएगा और अपना रास्ता ढूँढ निकालेगा।

स्वामीजी – घाटवाले महाराज बहुत उच्च कोटि के सन्त हैं। उनको हर कोई नहीं पहचान सकता। इसको तो उन्होंने ऐसा कहा, मगर उस भाई के लिये सन्त को क्या कहा? वह यदि आप लोगों को सुनाऊँ तो तुम्हारी आँखें खुल जाए। उन्होंने कहा–

'अरे, यह नहीं समझता तो तुमने इसके उद्धार का कोई ठेका ले रखा है? अपने आप श्मशान में जाएगा तब अक्ल ठिकाने आएगी।'

सुनकर सभी स्तब्ध हो जाते हैं। जिन्होंने (संतने) सारे बन्धन तोड दिये हैं, जिनको कोई मोह–माया नहीं है वे तो लौकिक भाई के उद्धार का करुणा-वश कितना प्रयास कर रहे हैं; और जो बन्धनों से

जकड़ा है, संसार ही जिसको प्रतीत सत्य हो रहा है वह अपने ही लिये भी कुछ नहीं करना चाहता! कैसी नियति है! यह कैसा विधान है विधि का! धन्य है महापुरुषों की यह करुणा!

स्वामीजी – इसीलिये बार बार कहता हूँ जागो! समय रहते चेतो। **आत्म–साक्षात्कार के लिये सब कुछ करो। यदि माया के लिये किया तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।** यदि आत्म साक्षात्कार किया, उस परम तत्त्व को जान लिया तो माया तो उसी की छाया है। छाया अपने अधिष्ठानके पीछे–पीछे चलती है। छाया को पकड़ने गए तो वह कभी पकड़ में नहीं आयेगी। लेकिन अधिष्ठान को, जिसकी वह छाया है–उस मूल को पकड़ लिया तो छाया भी उसके पीछे–पीछे आ जाती हैं।

इसलिये गुरू की आज्ञा का महत्व समझना चाहिये। मनबुद्धि से उसका मनमाना अर्थ नहीं निकालना चाहिये। महापुरुषों के चरणों में रहकर निष्काम भाव से उनके बताए अनुसार साधना में जुट जाए तो लक्ष्यसिद्धि दूर नहीं है।

ॐ ॐ ॐ

ऐसा साधु खोज के रहिये चरणन लाग।
मिटे जन्म की कल्पना जाके पूरन भाग॥

✻ ✻ ✻

कबीरा दर्शन सन्त के साहेब आवे याद।
लेखे में सो ही घड़ी बाकी के दिन बाद॥

ॐ

संत शरण जाईये

१०–११–७६
बुधवार

आश्रम के फाटक पर एक कार आकर रुकी है। सुबह के साडे नौ बजे हैं। कार में से वृन्दावन के प्रसिद्ध संत पूज्य श्री 'वैरागी बाबा' व उनके दो तीन भक्त उतर कर आश्रम में प्रवेश करते हैं। आश्रम के साधक दौड़कर उनके चरण स्पर्श करते हैं। इतनें में स्वामीजी भी उनकी आवभगत करने आ पहुँचे हैं। स्वामीजी वैरागी बाबा को बड़े प्रेमभाव से अपनी कुटिया में ले जाते हैं।

वैरागी बाबा ऊँचे डील–डोल के प्रभावी–तेजस्वी संत हैं। पिछले महीने भर से 'आपश्री' अहमदाबाद में कई भक्तों को सत्संग का लाभ दे रहे थे। वहाँ 'आपश्री' को किसी ने स्वामीजी के प्रवचन की पुस्तिका दी थी। उसे देखकर 'आपश्री'ने स्वामीजी से भेंट की इच्छा प्रकट की थी। स्वामीजी ने भी आपश्री (वैरागी बाबा) के बारे में सुन रखा था। आज दोनों पूज्य सन्तों का भाव भरा मिलन इस आश्रम में साधकों को देखने का सौभाग्य मिल रहा है।

वैरागी बाबा (आसन पर विराजमान होते हुए) – महाराजजी! आपके यहाँ तो मौज लगी हुई है। अहा! कैसा मनोहर पवित्र वातावरण है यहां! यह स्थान तो बड़ा सुहावना है! हमको पहले किसी ने नहीं बताया। अब जाने का प्रोग्राम बना हुआ है तब मिलने का संयोग बैठा है। मैं तो यहाँ महीने भर से ठहरा हुआ हूँ। यदि पहले

से पता लगता तो यहाँ समय निकालकर आते और २–४ घण्टा इस पवित्र मनोहर वातावरणका आनन्द लेते।

सभी वैरागीजी की प्रसन्न एवं सरल मुद्रा से कही हुई बातें सुनकर मुस्करा रहे हैं।

स्वामीजी – (वैरागीजी से) स्वामीजी, आपने बड़ी कृपा की इस कुटिया पर पधार कर। कुछ फल आदि तो लेंगे न?......अरे भाई, कुछ फल फूल लाओ! देखो, संत पधारे हैं आज आश्रम पर। संतों का संग बड़े भाग्य से मिलता है।

वैरागी बाबा के चेहरे पर भगवद्प्रेम की मस्ती झलक रही है। स्वामीजी उनको साथ लेकर नदी तट पर जाते हैं। साबरमती नदी की कल-कल बहती हुई स्वच्छ धारा को वैरागी बाबा मंत्रमुग्ध होकर देखते रहे। फिर बोले –

वैरागी बाबा–आप लोग सब बड़े ही भाग्यशाली हैं। ऐसा मनोहर आश्रम! आश्रम के पास में ही बहती हुई ऐसी पवित्र स्वच्छ जलधारा! अहा! और हमें तो शहर में सेठों की कोठी में ठहरना पडा है। क्या करें!...बाकी जो आनन्द सन्तों के निर्जन स्थानों में मिलता है, वह शहर की कोठियों में कहाँ...?

वैरागी बाबा के सरल भाव और आत्ममस्ती में कहे इन शब्दों ने आश्रम के साधकों को भी सचेत कर दिया है। उनको अपने साधना स्थान का महत्व अब विशेष रूप से समझ में आने लगा है कि 'अहो! हम यहाँ रहते हैं, साधना करते हैं, परन्तु कितनी गति से! बडे बडे सन्त भी जिस स्थान को इतना महत्वपूर्ण स्थान बता रहे हैं, वहीं हमें सदैव रहने का सौभाग्य मिला है; अहा! हमारा कितना सौभाग्य है! उनको नये सिरे से स्थान की अनुपम महत्ता वैरागी बाबा के इन शब्दों से समझ में आने लगी है।

वैरागीबाबा (स्वामीजी से)–महाराजजी ! हमको किसीने आपके प्रवचन की किताब 'सहजवाणी भाग–५' दी थी। उस पर आपका सरल आकर्षक चित्र था और नीचे लिखा था –

"हर समय प्रसन्न रहना ही ईश्वर की सबसे बड़ी भक्ति है।"

पुस्तक को अन्दर से भी मैंने थोड़ा पढ़ा तो मुझे लगा कि ये भी कोई मस्त फकीर हैं। इनसे अवश्य मिलना चाहिये। इसलिये चला आया। अब समय भी कम है, परन्तु एकदम जाने की भी इच्छा नहीं हो रही है।

स्वामीजी–आपने पधार कर बड़ी कृपा की। आप इसे अपना ही स्थान समझें। जब भी आप अनुकूल समझें इधर पधारते रहें। अब दो अमृत वचन हमारे साधक आपके मुखारविन्द से सुनने को आतुर हैं। चलें, सत्संग भवन में चलते हैं।

सत्संग भवन में दोनों पूज्य मित्र संत एक मंच पर विराजमान हैं। पहले एक दो भजन गाए जाते हैं, उससे वातावरण और गंभीर एवं पवित्र बन जाता है।

वैरागी बाबा—

संत का दर्शन ही सत्य का दर्शन है, संत की पूजा ही सत्य की पूजा है, संत की वाणी ही सत्य वाणी है। जिस को सत्य को जानना है, उसे संत की शरण जाना चाहिये। बिना संत के प्रसन्न हुए सत्य का बोध नहीं होता। इसीलिये कहा जाता है कि भगवान का आना दुष्टों के संहार के लिये इतना आवश्यक नहीं होता जितना संतों के लिये आना होता है। क्योंकि दुष्ट तो अपने दुष्ट कर्मों से स्वयं ही समाप्त होते हैं।

इसीलिये भगवान कहते हैं, "मैं तो शबरी के बेर खाने आया हूँ, साथ साथ रावण जैसे दुष्टों को भी खत्म करूँगा।"

आप आश्चर्य मानेंगे कि सुबह जुकाम व खांसी से इतना गला पकड़ा हुआ व भारी था कि मुझे चिंता हो रही थी कि यदि बोलने का मौका आया तो कैसे बोल पाऊँगा, मगर इस समय गला एकदम ठीक हो गया है। इश्वर का कोई चमत्कार ही हुआ लगता है।

स्वामीजी के प्रवचन वाली 'सहजवाणी' पुस्तक पर स्वामीजी का हँसता हुआ पोज देखते ही मैं समझ गया कि यह हँसी ईश्वरी मस्ती की हँसी है ! ईश्वर के दीवाने ही हँस सकते हैं। हरेक नहीं हँस सकता। अरे, भीतर तनाव भरा पड़ा है तो हँसोगे कैसे...?

कह कर वैरागी बाबा हँस पडते हैं। साथ में सभी श्रोता भी हँस पड़ते हैं।

वैरागी बाबा–मनुष्य का मास्तिष्क दूसरों के गुण दोषों का मीमांसा में ही लगा रहता है। दूसरों के दोष–दर्शन से द्वेष बढ़ता है। इन दोषों से बच कर सर्वत्र भगवत्कृपा का दर्शन करो तो व्यक्तित्व में चमक आती है। जीवन को अशांत बनाने वाले राग–द्वेष, मद–लोभ आदि से बचना है तो दिव्य भगवत्कृपा का पान करो, और इसके लिये सत्संग के सिवाय कोई उपाय नहीं है।

जहाँ भक्ति व ज्ञान हैं वहाँ निर्भयता है। किसी भी संत की हिस्ट्री (इतिहास) उठा कर देख लो, वहाँ यदि निर्भयता है तो उसके पीछे ज्ञान व भक्ति का ही रहस्य छुपा नजर आएगा। प्रह्लाद को किसीने पूछा, "हे प्रह्लाद ! तुम्हारे सारे परिवार में तुम्हारे जैसी मस्ती व निर्भयता किसी के भीतर देखने में नहीं आती, फिर तुम्हारे अन्दर इतनी मस्ती व निर्भयता कहाँ से आई ?" तो प्रह्लाद कहते हैं, "मुझमें संतों के

संग से--संतों की कृपा से दृढ़ भगवद्निष्ठा आ गई है, इसीलिये हर समय मुस्कराता–गाता रहता हूँ।"

आप सबके बड़े पुण्य कर्म उदय हुए हैं जो आपको (स्वामीजी की ओर देखते हुए) ऐसे सन्त मिले हैं। आप स्वामीजी के संग का पूरा लाभ उठावें। उधर शहर में हम लोगों को तो कोठियों में रहकर जुकाम हो जाता है। अब तो यह स्थान देख लिया है। हमें अभी जरा अन्य कार्यक्रमों में जाना है, नहीं तो और इधर के पवित्र वातावरण की मस्ती लूटते।

वैरागी बाबा अपने वचनामृत का पान कराकर स्वामीजी की ओर देखते हैं और कहते हैं, "अब आप महाराजजी कुछ आशीवर्चन कहिये।" स्वामीजी भी उनकी ओर मुस्करा कर देखते हैं, फिर बोलना प्रारंभ करते हैं:

स्वामीजी—संतों के चरणों में सुना ही जाता है सुनाया नहीं जाता। लेकिन सुनने के लिये भी कभी कभी सुनाना पड़ता है। (हँसी) चिरंजीवी श्री काकभुशुण्डिजी के पास महर्षि वसिष्ठ जाते हैं। यह योगवासिष्ठ में कथा आती है। उसमें वसिष्ठजी भुशुण्डिजी से पूछते हैं, "आप की चर्चा हमने स्वर्ग में भी सुनी है। आपसे मुझे यह जानने की इच्छा उत्पन्न हुई कि आप इतने चिरंजीवी (दीर्घजीवी) किस प्रकार हुए हैं, इसीलिये मैं आपके पास आया हूँ।" तो भुशुण्डिजी कहते हैं–"हे महर्षि! आप तो त्रिकालज्ञ हैं। आपसे क्या छिपा है। फिर भी बडों के आगे बोलने से कोई गल्ती भी हो तो वह सुधर जाती है, अतः आपकी आज्ञा का पालन करुँगा।" ऐसा ही आज प्रसङ्ग बना है।

मंच पर विराजमान् दोनों पूज्य सन्त एक–दूसरे की ओर देख कर हँस पड़े हैं। वे क्या सोचकर और क्या समझकर हँसे हैं यह तो

वे ही जानें, मगर उनकी हँसी के साथ श्रोताओं में भी प्रसन्नता की लहर दौड़ गई है।

स्वामीजी – संतों के सान्निध्य से जीवन में सरलता और निर्भयता आती है, क्योंकि उनका जीवन ही निर्भयता और सरलता में ढ़ला होता है।

"संत संत सब एक हैं, अपनी अपनी ठौर;
वचन विवेकी पारख उसके माथे मोर।"

कुछ लोग चर्चा करते हैं–अमुक संत बड़े कि दूसरे संत बड़े। अरे, संतों की पहचान ऐसे की जाती है क्या? **सन्तों को पहचानना हो तो अपने आपको पहचानो**, तभी संतों को पहचान पाओगे, उनकी महानता समझ में आयेगी, नहीं तो उनकी देह को देखकर हम सन्त की सीमित कल्पना करके ही रह जायेंगे। अपने आपको पहचान लिया तो स्वयं ही कह उठेगा—

"वो थे न मुझसे दूर, न मैं उनसे दूर था,
आता न था नजर, तो नजर का कसूर था।"

लौकिक जगत में हम जो कुछ भी जानते हैं वह हम अपनी इन्द्रियों के सहारे से ही जानते हैं, इसीलिये किसी भी वस्तु के बारे में हम पूर्ण जानकारी नहीं कर पाते; क्योंकि इन्द्रियाँ स्वयं एक एक गुण से ही सम्बंधित हैं। वे स्वयं एकांगी जानकारी दे सकती हैं। जैसे हमें गुलाब के फूल की जानकारी करनी है। हम उसे आँख से देखकर उसका रूप व रंग जान लेते हैं, परन्तु उसकी कोमलता व सुगंध जाननी हो तो हाथ व नासिका की मदद लेनी पड़ती है। ऐसे ही गुलाब के अन्य गुणों की जानकारी लेनी हो तो अन्य इन्द्रियों की मदद लेनी पडेगी, और हो सकता है उसमें कई ऐसे अज्ञात गुण भी होंगे

जिनको जानने की कोई इन्द्रियाँ हमारे पास विकसित न होने से उन्हें नहीं जान पायेंगे। तो एक सामान्य गुलाब को भी हम पूरी तरह नहीं जान पाते तो गुलाबोंका गुलाब (आत्मानन्द) जिस संत के हृदय में झलकता है उसे कैसे पहचान पाएंगे ?

कुछ हवा, कुछ मिट्टी, कुछ पानी, कुछ प्रकाश और कुछ आकाश इन तत्त्वों के मेल से गुलाब बना है। जब हमारे हाथ में गुलाब आता है तब गुलाब के रूप–रंग व सुगन्ध पर ही हमारी दृष्टि जाती है। उसके इन मूल तत्त्वों पर नहीं जाती। तो जैसे उसका बाह्य ज्ञान ही हमें होता है उसका तात्त्विक ज्ञान नहीं होता, वैसे ही संत हमें मिल जाते हैं, परन्तु यदि दृष्टि नहीं है तो हम संत तत्त्व नहीं समझ पाते।

खाली माथा टेकने या दक्षिणा देने से भी संत की पहचान नहीं कर सकते। यह संत ऐसा है, वह ऐसा है आदि मीमांसा करते रहे तो भी संत को नहीं पहचान पाएंगे। सन्त को जानने के लिये सन्त हृदय बनाना पड़ता है। यदि संत हृदय बनाना है तो समर्पण भाव जगाना पड़ेगा। और समर्पण भाव हममें जग गया तो संत की उदार दृष्टि हम पर पड़ेगी। सन्त हमारी बुराइयों को, हमारी कच्चाइयों को पहचान जाएंगे, उनपर वे कुठाराघात करेंगे और उन्हें दूर कर देंगे। उससे हमारी विशेष ज्ञान दृष्टि खुलेगी और तब हम तत्त्व रूप से सन्त को जानकर अपना जीवन धन्य कर सकेंगे।

कोई सन्त से कहता है, 'अपना पता दे दीजिये।' अरे, **सन्त का भी कोई पता होता है ? सन्त का एक ही पता होता है-जहाँ उनका मन स्थित होता है।** सन्त का मन महान् तत्त्व में स्थित होता है। इसलिये सन्त महान् होते हैं। वही परम आनन्द का पद होता है।

वसिष्ठजी कहते हैं – हे रामजी ! न चक्रवर्ती राजा सुखी है न स्वर्ग में गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर आदि देवता सुखी हैं। स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल्लोक में जो कुछ भोग पदार्थ हैं सभी असत् और अशुभ हैं। कोई पदार्थ श्रेष्ठ नहीं है। न पृथ्वी का राज्य श्रेष्ठ है, न देवताओं का रूप श्रेष्ठ है, न नागों का पाताल्लोक श्रेष्ठ है, न शास्त्रों का पठन-मनन श्रेष्ठ है, न काव्य का जानना श्रेष्ठ है, न पुरातन कथाक्रम वर्णन करना श्रेष्ठ है, न बहुत जीना श्रेष्ठ है, न मूढ़ता से मर जाना श्रेष्ठ है और न ही इस त्रिलोकी में और कोई अन्य पदार्थ श्रेष्ठ है; श्रेष्ठ वही है जहाँ संत का मन स्थित है।

उस परम–पद को जानना–उसमें स्थित होना ही सच्चा पुरुषार्थ है जिसमें सन्त स्थित होते हैं। उस जानने योग्य अपने आत्मदेव को हम नहीं जानते, इसीलिये हम दीन होकर इधर-उधर अपनी तुच्छ आवश्यकताओं के लिये देवताओं की उपासना करते फिरते हैं। देवता भी तो उसी व्यापक चेतन तत्व की सत्ता लेकर हमें वरदान देते हैं !

एक बार बम्बई में श्री साधु वासवानी के पास अपनी सांसारिक विषयों की मांग लेकर कुछ सेठ गए। श्री वासवानीजी ने उनसे कहा-यह रोज रोज यह चाहिये वह चाहिये के लिये आपको इधर उधर हाथ फैलाने पड़ते हैं तो मैं तुम्हें ऐसी प्रार्थना ही सिखा देता हूँ जिसको रोज सुबह स्नान आदि से पवित्र होकर आसन पर बैठकर करना, जिससे तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। बोलो, तो तुमको वह प्रार्थना सिखा दूँ ? तुम सब मेरे पीछे–पीछे बोलो। प्रार्थना इस प्रकार थी–

"हे भगवान ! हे दीनबन्धु ! हे दीनानाथ ! मेरी डोरी तेरे हाथ। हे दयालु प्रभु, हे अंतर्यामी, हे घट घट वासी, हे दुःखभंजन हमारे दुःख दूर करो। हे करुणासागर, हम पर करुणा करो। हे दया के सागर, हम पर दया करो। हमें खूब-खूब भोग सामग्री मिलें, खूब विषयसुख मिलें, और कम से कम जवाबदारी उठानी पड़े। मनुष्य देह में तो

मर्यादित विषय भोग मिलते हैं और जवाबदारियाँ बहुत उठानी पड़ती हैं। अतः आइन्दा हमें ऐसा जन्म दें, ऐसी योनि दें जिसमें भोग तो खूब मिलें, पर जवाबदारियाँ नहीं उठानी पडे; इसलिये हमें कूकर, शूकर, गधे, चूहे, बिल्ली, का जन्म दें।"

कहकर स्वामीजी मुक्तकंठ से हँस पड़ते हैं और उनके साथ वैरागी बाबा एवं श्रोतागण भी हँस पड़ते हैं।

वैरागी बाबा को दूसरे किसी कार्यक्रम में जाना है, अतः वे स्वामीजी से विदाई लेते हैं। स्वामीजी उनके साथ-साथ कार तक पधारते हैं और भाव भरे शब्दों में कहते हैं-

"वैरागीजी! आश्रम आपका ही है। अब आपने यह स्थान देख ही लिया है। आशा करता हूँ शीघ्र ही अपनी अनुकूलता देखकर इधर पधारेंगे।"

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

आसक्ति जब तक लेश है, तब तक न चिंता जाय है।
नहिं चित्त थिर जब तलक, नहिं मोक्ष-सुख नर पाय है॥
कौपीन तक में राग हो, तो जाय रुक परमार्थ है।
निर्मूल होना राग का, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

ॐ

और सभी दुःखों से पार हो जाएं।

२७-१०-७६
बुधवार

सत्संग भवन में श्रोतागण स्वामीजी के अमृतवचनों का पान कर रहे हैं।

स्वामीजी-जिसको परमार्थ में आगे बढना है उसे अपनी हृदय शुद्धि का सदैव ख्याल रखना चाहिये। किसीके भी साथ बुरा व्यवहार नहीं करना चाहिये। किसी का भी दिल दुखाने से उसके हृदय की आह निकलती है, जो हमारे पुण्यों को नष्ट करती है।

तुलसी हाय गरीब की कबहु न खाली जाय।
मुए ढोल को चाम से लोहा भस्म हो जाय॥

हमसे सदैव पुण्य कर्म ही हो पापकर्म नहीं हो इसका हमें सदैव ध्यान रखना चाहिये। हम समृद्ध होते हैं, सुखी होते हैं तो सोचते हैं, हमने पुण्य किये हुए हैं पाप किये ही नहीं। ऐसा नहीं है। उस समय हमें पुण्य कर्मों का फल मिल रहा होता है। परन्तु वह समय सदैव नहीं चलता। उसके बाद पापकर्म भी फल देने लगते हैं। जैसे चक्कीमें से बाजरी पिसते समय बाजरी का आटा आता है। जब गेहूँ डालते हैं तो गेहूँ का आटा उसी समय आना शुरु नहीं होता। गेहूँ डालने पर भी थोडी देर तक बाजरीका आटा ही आता रहता है, लेकिन बाद में गेहूँ का आटा आना चालू हो जाता है, वैसे ही

सुख व समृद्धि के दिनों में भी यह सोचकर निश्चिंत नहीं होवें कि हमने तो शुभ कर्म ही किये हुए हैं। इसीलिये देखो सुख का जीवन जी रहे हैं। नहीं, ये पूर्व के किये गए हमारे पुण्य कर्म हमको अभी फल दे रहे हैं, परन्तु जब उनका फल पूरा हो जायेगा तब पाप का वारा-पाप का फल आना शुरु हो जायेगा। इसलिये ध्यान रहे हमसे कभी पापकर्म न होवें, शुभ कर्म ही होवें। दुःख पडने पर तो सभी शुभ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। विशेषता तो उसकी है जो सुख के दिनों में भी शुभ कर्म में रत रहे।

दु:ख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे तो दुःख काहेको होय॥

तो जो सुख का आकांक्षी है उसे चाहिये कि दूसरों को दुःख न दे। क्योंकि जैसा बोवोगे वैसा ही काटोगे। अपने लिये तो सभी जीते हैं, परन्तु–

"**जीना भला है उसका जो जिए औरों के लिये।**"

शायर कहता है–

'**यही है इबादत, यही दीनो ईमाँ,**
कि दुनियाँ में काम आए, इसाँ के इन्साँ।'

हम दूसरों को देते ही देते रहें, पाने की इच्छा नहीं करें। यदि दिया ही दिया है तो पाने का अधिकार तो स्वयं ही बन जाता है। हम प्रेम ही प्रेम बांटें, दुःख नहीं बांटें। हमारे आचरण से सम्बंधियों को, अपने पड़ौसियों को किसी को भी दुःख न पहुँचे। हम उन्हें सुख दें हम उनमें प्रेम बांटें और प्रत्युत्तर में प्रेम की या सुखकी इच्छा नहीं रखें। बांटेंगे तो प्रेम या सुख प्रत्युत्तर मे मिलने

ही वाला है। उसको कोई रोक नहीं सकता, क्यों कि कर्म में फल देने की ताकत होती है। ऐसा ही हमारे महापुरुषों का अनुभव है। इसलिये कार्य करें, मगर फल मिलेगा कि नहीं इसकी चिन्ता हमें करने की आवश्यकता नहीं है। Western philosophy says—"First deserve and then desire, but Indian philosophy says, Deserve only and need not desire. पाश्चात्य दर्शन कहता है–'पहले अपने को किसी चीज के अधिकारी (योग्य) बनाओ, फिर उसको प्राप्त करने की इच्छा करो;' जब कि भारतीय दर्शन कहता है–'अपने को किसी वस्तु के अधिकारी तो अवश्य बनाओ किन्तु उसकी प्राप्ति की इच्छा न करो।'

जहाँ हम कर्म तो करते हैं परन्तु उस के फल की इच्छा करते हैं, उससे हमें यह फल मिलेगा ऐसी चाह रखते हैं, वहीं धोखा खाते हैं। वहीं हम अपने को दीन बना देते हैं। करो, केवल करने के लिये, फल के लिये नहीं। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं–

'**कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**'
(गीता)

कर्म करने में हमारा अधिकार है उससे मिलने वाले फल में आसक्ति मत रखो।

हमारा व्यवहार शुद्ध हो, हमारे आचरण में सचाई हो तो हमारा हृदय भी शुद्ध रहेगा। सत्य का पथ कभी नहीं छोड़ें। मेहनत व सचाई से की गई कमाई कोई नहीं चुरा सकता, क्यों कि—

'**बन्दा सत्य न छोड़िये सत छोड़े पथ जाय**
सत्य की बांधी लक्ष्मी फिर मिलेगी आय।'

धनोपार्जन बुरा नहीं है, परन्तु धन किस प्रकार से उपार्जन किया गया है, उस पर पाप–पुण्य निर्भर है। यदि धन के उपार्जन में सचाई का ख्याल नहीं रखा है, उसमें झूठ और कपट का सहारा लिया गया है तो वह धन हमारी भारी अशान्ति का कारण बन जायेगा। वह धन रहेगा नहीं। या तो व्यापार में घाटा होगा या कर्जा लेकर लोग लौटाएंगे नहीं – यानि उधराणी मारी जायेगी या बेटे बाप के विरोधी बनकर वह धन आवारागर्दी करके उड़ा देंगे। कहा भी है —

चत्वारो धनदायादाधर्माग्नि नृपतस्कराः।
ज्येष्ठस्य त्ववमाने न कुप्यन्ति सोदरास्रयः॥

संचित धन के धर्म, अग्नि, राजा व चोर ऐसे चार भागीदार हैं। इसमें धर्म सबसे बड़ा भाई है। उसका धनमें पहले उधिकार है यानि धर्मार्थ यदि द्रव्य का सदुपयोग नहीं किया तो ये शेष तीन कुपित होकर उसे हड़प जाएंगे। या तो वह धन आग की भेंट हो जायेगा या चोर ले भागेगा या टेक्स लगाकर राजा उसे अपने अधिकार में कर लेगा।

इसलिये धनोपार्जन सचाई से करें और उसका अधिकांश भाग पुण्य कार्यों में व्यय हो। इससे धन की शुद्धि होती है। हम आत्म विश्लेषण करते रहें। अपने मन को अपने सामने खड़ा करके उसे हम पूछें कि आज तुमने क्या क्या किया? कितने अच्छे कर्म किये और कितने बुरे कर्म किये? कितनों को सताया और कितनों की सेवा की? ऐसे अपने आपको तोलते रहें, नहीं तो चढना उतरना चालू रहेगा और हम कहीं नहीं पहुँच पाएंगे, वहीं रह जाएंगे और सारा जीवन यों ही बीत जायेगा। हमको अंत में अशान्ति ही हाथ लगेगी और हमारे दुःखों का कभी अन्त नहीं होगा।

अपने मन को समझाना चाहिये कि —'हे मन! तू ऐसे कर्म कर कि उससे जन्म–मरण के तेरे सारे बन्धन टूट जाय, ऐसा नहीं कि और भी मजबूत बन जाय। तू सम्हल कर चला कर। गैर जरुरी बातों में समय मत गवाँ। तूने कितने न करने जैसे कर्म किये हैं, दूसरों को न बोलने जैसे शब्द बोले हैं, आँखों को न देखने जैसे दृश्य दिखाये हैं।' यानि मन का एक तरह से दिन भर का शाम को चौपड़ा खोलें। व्यापारी का दीपावली पर जैसे वर्ष भर की लाभ-हानि का चौपड़ा खुलता है, वैसे भक्त का कर्मों के शुभअशुभ को जानने के लिये हृदय खुलता है। तो **भले धन का चोपड़ा खुले न खुले, मन का चौपड़ा अवश्य खोलना चाहिये,** क्यों कि धन तो चला गया तो वापस आ सकता है, फिर से उपार्जन हो सकता है, मगर समय चला गया तो वापस नहीं आयेगा।

जिसका आहार शुद्ध नहीं, जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं तो हृदय शुद्ध कैसे होगा, और हृदय शुद्ध नहीं होगा तो जीवन शुद्ध कैसे होगा, और जीवन शुद्ध नहीं होगा तो मौत कैसे शुद्ध होगी; अर्थात् मरने के बाद ईश्वर में मिल जाना फिर मुश्किल हो जायेगा। **भगवान का भजन हो और आचरण में शुद्धता नहीं है तो वह भजन नहीं ढोंग है।** जैसे थंभों के आधार पर छत टिकी रहती है वैसे ही जीवन रूपी छत भी इन दैनन्दिन छोटे–मोटे व्यवहार रूपी खंभों पर ही टिकी रहती है। यदि खंभे मजबूत नहीं रहेंगे तो जीवन रूपी छत कैसे टिकी रह सकेगी?

मन के गुलाम बनकर ही चलते रहे तो गैर जरूरी कार्यों को करते रहेंगे और करके पछताते रहेंगे। जीवन यों ही बीत जायेगा और अंत में घोर निराशा हाथ लगेगी। इसलिये जीवन में शुभ कर्मों को बढ़ाते रहें और अशुभ कर्मों को घटाते रहें।

तो जीवन रूपी छत को टिकाए रखने वाले शुभ कर्मों रूपी थम्भे यदि हमने मजबूती से खड़े नहीं किये और राग–द्वेष, लोभ–मोह के वशीभूत होकर अपने आचरण को ठीक नहीं किया तो हमको शान्ति नहीं मिलेगी और अपने कुटुम्ब को व अडोस–पड़ोस को भी हम नरकतुल्य बना देंगे। कई माताएँ अपने छोटे–छोटे स्वार्थों के लिये परिवार के अन्य सदस्यों के विरुद्ध अपने पति के कान भर देती हैं और झगड़े शुरु हो जाते हैं, फिर शान्ति ढूंढ़े भी नहीं मिलती।

द्रौपदी ने परिणाम का विचार किये बिना जब दुर्योधन अपने भ्रम से महल में फिसलकर गिर पड़ा था तो विनोद में इतना ही कहा था – 'अन्धे के पुत्र अन्धे ही होते हैं' जो दुर्योधन को सहन नहीं हुआ और परिणामस्वरुप इतना बड़ा महाभारत का युद्ध हो गया। इसी प्रकार कैकेयी ने मंथरा के कहने में आकर भरत को राज्य दिलाने के लिये दशरथ से हठ किया, जिसके परिणामस्वरूप राम को १४ वर्ष का वन-वास भोगना पड़ा औद अयोध्या सूनी हो गई। राजा दशरथ को राम के वियोग में प्राण त्यागने पड़े और जिस राज्य को भरत को देना चाहा वह भरत ने आखिर स्वीकार भी नहीं किया।

ये संग दोष के दुष्परिणाम हैं। कुसङ्ग से बुद्धि भ्रमित होती है। भ्रमित बुद्धि से शुद्ध आचरण हो नहीं सकता और अशुद्ध आचरण से हृदय अशुद्ध होता है। अशुद्ध हृदय में शान्ति का–सुख का वास नहीं हो सकता। वास्तव में सुख या दुःख है नहीं, हम ही खड़ा कर देते हैं। सुख या दुःख हृदय की पवित्रता या मलिनता पर निर्भर है। जितना हमारा मन अपवित्र होगा उतना ही हम अशुद्ध आचरण करेंगे और अपने मन को अधिक मलिन, अधिक अशांत बना लेंगे। जितना हमारा मन पवित्र होगा, उसमें राग–द्वेष आदि विकारों का अभाव होगा उतना ही हमारे द्वारा शुद्ध आचरण होगा, उतना ही हम निर्भय होंगे

व हमें सुख का अनुभव होगा। **अशुद्ध आचरण भय का कारण बनता है और भय ही दुःख का मूल है। जितने आप निर्भय हैं, उतने ही आप सुखी हैं।** वस्तुतः कोई हमें सुख दुःख नहीं देता, कोई हमें भयभीत कर नहीं सकता। हम ही सचाई छोड़कर अशुद्ध आचरण करके भय पाल लेते हैं और दुःखी होते हैं। क्यों कि, साँच को आँच नहीं। जो सत्य का पल्ला पकडे हुए हैं उनके अन्दर अपार आत्मिक बल जग उठता है। सत्य का पक्ष ही ईश्वर का पक्ष है। इसीलिये तो अनुभवी सन्तों ने कहा है –

'साँच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप
जाके हिरदे साँच है ताके हिरदे आप।'

तो जहाँ सत्य है, वहाँ भगवान है और जहाँ भगवान है, वहाँ सदैव विजय है। गीता के अन्तिम श्लोक में संजय इसी बात को कहता है –

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥७८॥

(गीता अ. १८)

'हे राजन् ! विशेष क्या कहूँ ? जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान हैं और जहाँ गाण्डिवधारी अर्जुन है, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है।'

ये बातें धर्मग्रंथों में लिखी है इसलिये कहता हूँ, ऐसी बात नहीं है। ये कईयों की अनुभवसिद्ध हैं। ये कई कसौटियों में खरी उतरने के बाद ग्रंथों में भी लिखी गई हैं। (एक भक्त की ओर देखते हुए) 'क्यों झीणल शाह ?'

भक्त – (हाथ जोड़कर) – जी पिताजी।

इस भक्त की कुछ विशेष प्रकार की श्रद्धा स्वामीजी के प्रति बनी हुई है, अतः यह स्वामीजी को पिताजी ही कहता है।

स्वामीजी – (विनोदपूर्वक) – खाली पिता या और कुछ?

भक्त – माता–पिता दोनों।

स्वामीजी – (विनोद करते हुए) – खाली माता–पिता या और कुछ!

सभी उस भक्त की ओर उत्सुकता से देख रहे हैं कि देखें आगे यह क्या कहता है?

भक्त (सोचकर) जी...,गुरु भी।

स्वामीजी – गुरु ही केवल या और कुछ?

भक्त – (हँसकर)......सत्गुरु।

उसके ऐसा कहते ही स्वामीजी के साथ सभी श्रोतागण हँस पड़ते है! हँसीके साथ ही वातावरण में आनन्द की लहर दौड़ गई।

स्वामीजी – (उस भक्त की ओर इशारा करते हुए) यह पहले वहुत कमाता था! दिन के १००–२०० रु. सीधे कर लेता था, परन्तु घर मे भारी अशान्ति का साम्राज्य था। सभी बीमार रहते थे घर में। लम्बी लम्बी डाक्टर की सुईयाँ लगाती थी सव को। डाक्टर को इसने खूब पैसे दिये। आखिर यह तंग आ गया अपने दुःख से। यह एक संत (स्वामीजी स्वयं) के चरणों में गिर पड़ा। संत कों इसने अपनी दुःख–गाथा सुनाई और कहा कि घर मे डाक्टर इतनी–इतनी वड़ी सुईयाँ लगाता है, उसको डर भी नहीं लगता! संतने कहा – अरे,

उसकी बात करता है! तू जो दुकान पर गरीबों का गला काटकर धन इकठा करता है, तुझे ऐसा करते दुःख नहीं होता?...तुझे ग्राहक में भगवान नहीं दिखते। तू उन्हें बलि का बकरा समझकर उनकी मेहनत की कमाई को हड़प जाता है, तुझे डर नहीं लगता? **असत्य आचरण से कमाया हुआ धन घर में बीमारी और अशान्ति नहीं लायेगा तो और क्या लायेगा? वह धन जो पाप से कमाया हुआ है, जो दूसरों से धोखा देकर इकठ्ठा किया गया है, जिसमें दीन–दुखियों की हाय मिली हुई है वह कभी घरमें नहीं रहता और जाता है तो घर की सुख–समृद्धि, शांति और स्वास्थ्य व इज्जत सब को हर ले जाता है।** अभी भी तू चेत जा! यह प्रकृति का प्रकोप तो केवल संकेत मात्र है, नहीं तो अपना इकठा किया हुआ यह पाप तुझे पतन के ऐसे गर्त में जा पटकेगा कि फिर तू उठ नहीं सकेगा।

वस, संत में इसका श्रद्धा थी। समय पर यह चेत गया। संत ने उसे एक मंत्र भी जप करने को बता दिया। उसने सन्त की आज्ञा के अनुसार अपना आचरण सुधार लिया और अब देखो, कितना प्रसन्न रहता है? (उसीसे) क्यों, ठीक कहता हूँ कि नहीं?

भक्त (खिले हुए चहेरे से)–जी पिताश्री।

स्वामीजी–**सुख और समृद्धि में विवेक खो जाता है। दुःखमें विवेक जगता है।** सुख में ज्यादा धन होने ओर अच्छा संग न मिलने से व्यक्ति मनमानी करने लगता है और पापकर्म में लिप्त हो जाता है, जबकि दुःख पड़ने पर पापी से पापी व्यक्ति का भी विवेक जगता है और वह धर्माचरण करने लग जाता है व धर्मात्मा बन जाता है।

दूसरों के बारे में किया अशुभ चिन्तन कई बार नींद में भी चैन नहीं लेने देता। जब मन शांत होता है, तब वे अशुभ विचार

सपनों में आते हैं । कई बार सपने में लगता है जैसे हमने किसी का अहित किया, इसलिये पुलिस हमें पकड़ कर ले गई, हमको सजा हो गई । हम सजा भुगत रहे हैं । हम जेल में बन्द हैं और कुछ महीनों बाद छूटेंगे । इस प्रकार हमारा ही अशुभ चिन्तन सपने में भी फल दे देता है तो जाग्रत में किया गया पाप कर्म तो फल देगा ही । सपने से जगने पर हम उसके मिथ्यापन को समझ कर हँसते हैं, लेकिन जब तक सपना चलता है तब तक सच्चा लगता है । उस समय हमारा ही मन पुलिस, जेलखाना, दंड देने वाला और सजा भुगतने वाला बन जाता है । क्यों कि मन हमारा असत्य आचरण के कारण मलिन बन जाता है और हम अपने आप ही दुःख भुगतते हैं । हम ही अपने दुःख के निर्माता हैं । उस शरीर को जिसको आखिर जलाना ही है थोडा सा मजा दिलाने के लिये हम कितना कपट करते हैं? कितने कुकर्म करते हैं? कितने प्रकार के झूठ बोलते हैं? फिर एक झूठ को छिपाने के लिये और नये सौ झूठ बोलते हैं ।

परिणाम स्वरूप हमें अशान्ति हाथ लगती है । हम अपने मन को समझाएं कि 'हे मन! आखिर थोड़े से मजे के लिये जो कि वास्तव में मजा है भी नहीं, क्यों तू फिसल पड़ता है और सत्य को छोड़ कर झूठ का आश्रय लेता है? झूठ बोलने से पूर्व तो सुखाभास सा लगेगा, परन्तु अंत में दुःख ही हाथ लगेगा । फिर थोड़े से सुख के लिये बोला गया झूठ या किया गया पापाचरण या कुकर्म बिना बुरा फल दिये व्यर्थ तो जायेगा नहीं । यह देह तो छूट जायेगी, परन्तु वह किया गया दुष्कर्म दूसरे जन्मों में भी चैन नहीं लेने देगा । हर मजे के पीछे सजा है । इसलिये हे मन! तू सम्हल कर चल । तू विचार की तराजू सदैव हाथ में रख । तू जो भी बोले, जो भी कर्म करे वह विचार की तराजू पर तोल कर करे । यदि तुझसे भूल से कुछ बुरा हो भी गया है तो उसका प्रायश्चित कर ले और आगे से सावधान

हो कर चल । अपनी छोटी छोटी गलतियों के कारण तू कितने जन्म-जन्मांतरों से कितने नश्वर शरीरों में भटक चुका है, फिर भी तुझे वास्तविक सुख तो मिला नहीं । इसलिये अब भी समय है, सम्हल जा और संसार के विषयों से मजा लेने का मोह छोड़ दे । वास्तविक आनन्दका स्वामी तो तुझे सत्ता व शक्ति देनेवाला अन्दर ही सत् चित्-आनन्द स्वरूप आत्मदेव विराजमान् है । तू उसीसे नेह लगा, बाहर मत भटक। जब तू अन्दर ध्यान धरेगा तब तू आप ही आप कह उठेगा-

"जिन्हें मैं ढूँढ़ता था आस्मानों में जमीनों में
वो निकले मेरे जुल्मतखाना-ए-दिलके मकीनों में ॥"

इस प्रकार मन को समझाएं और उसको सही दिशा की ओर मोड़ दें ।

यह देखो, (एक की ओर संकेत करते हुए) तुम्हारे सामने यह बैठा है न, यह अजमेर का है । इसकी राम कहानी आप लोगों ने नहीं सुनी होगी । यह भी मन के कहने में चलता था । (उसीसे) क्यों, ठीक कहता हूँ न?

वह (सिर नीचा किये हुए) – जी स्वामीजी ।

स्वामीजी – यह बहुत पीता था । महीने में १५००-२००० रुपये की शराब पी जाता था । मगर शांति उससे कहाँ मिलने वाली थी? संगत भी जैसों तैसों के साथ थी इसकी । कोई सन्तान भी नहीं होती थी । बेचारा बड़ा परेशान था । जीवन जीने की इसकी हिम्मत टूट रही थी ।

ईन्साँ की अज्म और हिम्मत से जब दूर किनारा होता है,
तूफाँ में टूटी किश्ती का भगवान सहारा होता है ।

तो इसके भाग्य से उधर कोई सन्त (स्वामीजी स्वयं) इसको मिल गए। वे समझ गये इसके दुःखको। वे जान गए कि यह अपने दुःख को कम करने के लिये शराब पीता है, परन्तु उसका नशा तो सुबह होते ही उतर जाता है।

शराब चढकर उतरने वाली,
पिलाई तो क्या पिलाई साकी।
जो चढ़के इक बार फिर न उतरे,
वो मय पिला दे तो हम भी जानें।

तो जो चढकर उतरें नहीं वह शराब थी उन संत के पास। बस, उन्होंने उसे वह पिला दी। उसे राम रस पिला दिया। राम रस पिला दिया तो काम रस विदा हो गया। अब यह सुधर गया है। इसके भाव पवित्र हैं। संत में इसकी बड़ा श्रद्धा है। और श्रद्धा है तो इसको फल भी उसका अच्छा मिला। अब इसके एक पुत्र भी है। इसका आचरण भी सुधर गया है और अभी यहाँ १० दिन आश्रम में साधना के लिये आया हुआ है।

सभी अजमेरी की ओर देखने लगे हैं। अजमेरी स्वामीजी को हाथ जोड़े हुए भक्तिभावसे बैठा है।

स्वामीजी – तो अपने मन को हम टटोलते रहें कि वह गलत रास्ते तो हमें नहीं ले जा रहा है? हमारी इन्द्रियों को हम विषयों में लिप्त नहीं होने दें। प्राचीन भारत में आश्रमों में गुरु की सेवा में रहकर आत्मज्ञान पाने वाले शिष्य ऐसी प्रार्थना किया करते थे –

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयामदेवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

'हे देवगण! हम अपने कानों से शुभ वचन ही सुनें। किसी की

निन्दा, गाली–चुगली आदि न सुनें। नेत्रों से भी सदा शुभ दर्शन ही करें। अमङ्गलकारी या पतन की ओर ले जाने वाले दृश्यों में हमारे नेत्रों का आकर्षण न हो! हमारी आयु का क्षण–क्षण शुभ कर्मों में लगे, भोगविलास या प्रमाद में न बीते। हमारे शरीर और शरीरों का एक एक अवयव सुदृढ़ एवं पुष्ट हो तथा उन सब का उपयोग भगवान की सेवार्थ हो यानि हम अपने शरीर एवं इन्द्रियों के द्वारा जीवनभर भगवान की सेवा–पूजा करते रहें।'

देवता हमारी प्रत्येक इन्द्रिय में व्याप्त रहकर उसका संरक्षण और संचालन करते हैं। ऐसी प्रार्थना करने से वे हमारे अनुकुल हो जाते हैं और हमारी इन्द्रियाँ सुगमतापूर्वक सन्मार्ग में लगी रह सकती है, इसलिये इस प्रकार की प्रार्थना की जाती थी।

कोई कहेगा – 'भगवान तो सर्वत्र है। वह कण कण में व्याप्त है। शास्त्रों में भी लिखा है 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या'। सब ब्रह्म का ही स्वरूप है। फिर हम कुछ भी देखें, कुछ भी सुनें सब ब्रह्म ही है। इस प्रकार का देखें और इस प्रकार का नहीं देखें या नहीं सुनें– ऐसा करने की क्या आवश्यकता है?...अरे बच्चा! यह सब तुमने शास्त्रों में पढ़ा है और विद्वानों से सुना है। अनुभव तो नहीं किया न? जब तक अनुभव नहीं किया तब तक ऐसा करते रहो। जब अनुभव कर लोगे तब तुमसे कुछ बुरा होगा ही नहीं। जो तुमसे होगा वह शुभ ही होगा! फिर तो जो तुम बोलोगे वह वेदवाक्य बन जायेगा। जिसके तुम हाथ लगाओगे वह प्रसाद बन जायेगी। जहाँ तुम पाँव धरोगे वहाँ तीर्थ बन जायेगा! जिस जल में तुम स्नान करोगे वह गंगाजल बन जायेगा। फिर तुम तुम नहीं रहोगे। तुम्हारे द्वारा ईश्वर कार्य करेगा। प्रकृति तुम्हारी सेवा में हर समय उपस्थित रहेगी। जो उसका अनुभव करता है, वह ऐसा बन जाता है। वह ज्ञानी बन जाता है। वह अखण्ड–ब्रह्माण्ड–नायक बन जाता है।

परन्तु सर्वत्र ब्रह्म ही है, या भगवान सब जगह है उसका अनुभव करने का साधन चाहिये। और वह साधन है निर्मल मन। भगवान कहते हैं—

'निर्मल मन सो मोहे पावा'

(तुलसीदासजी)

इसलिये श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा हृदयशुद्धि करने पर बार बार जोर दिया जाता है।

एक कहानी आपने सुनी होगी। एक व्यक्ति था। उसका नाम था 'बेवकूफ'। उसकी पत्नी का नाम था 'फजीती'। वह बडी झगडालू थी। एक बार वह झगड़ा करके घरसे भाग गई। बेचारा बेवकूफ उसको ढूंढने निकला। वह बेचारा गाँव-गाँव और जङ्गल-जङ्गल भटका। एक गाँव में किसीने उससे पूछा कि तुम किसको ढूँढ रहे हो, तो उसने जावाब दिया– 'पत्नीको।'

उसने पूछा– पत्नी का नाम क्या है?

बेवकूफ बोला– फजीती।

उसने फिर पूछा– और तुम्हारा नाम क्या है?

बेवकूफ ने कहा– 'बेवकूफ।'

अब वह व्यक्ति आश्चर्य से बोला–तब फजीती ढूँढने की क्या आवश्यकता है? बेवकूफ के लिये फजीती की कोई कमी नहीं है। वह तो सर्वत्र है। उसके लिये फजीती का घाटा नही। जहाँ बेवकूफ जायेगा तो फजीती तो उसके पीछे पीछे आएगी ही।

(सब हँस पडते हैं)

स्वामीजी– उस बेवकूफ जैसा ही हमारा भी हाल है। हम भी अपने ही अन्दर विराजमान् आनंद का स्रोत सच्चिदानन्द परमात्मा को भूलकर संसार के विषय रूपी जंगल में आनन्द ढूंढने के लिये भटक रहे हैं। जैसे कुत्ता हड्डी का टुकडा चबाता है तो उससे उसके मुंह में घाव होकर खून निकलता है तो वह चाटता है। उसमें उसको बडा स्वाद आता है। वह वास्तव में उसी के खून का स्वाद होता है, परन्तु वह समझता है, यह हड्डी में से स्वाद आ रहा है। हकीकत में स्वाद अन्दर ही है। तो उस सुख–स्वरूप आत्मदेव को जाननेकी तरफ ध्यान न देकर सुख के लिये जो बाकी साँसारिक विषयों में मनको भटकाते हैं, उनकी फजीती ही होती है। उनसे सच्चा सुख मिल नहीं पाता और वे निराशा में ही अपना जीवन पूरा कर जाते हैं।

अभी एक भक्त आता है और स्वामीजी को प्रणाम करता है। स्वामीजी का आशीर्वाद पाकर वह बैठ जाता है और उनका संकेत मिलने पर भजन गाता है—

पी रे यार पी—

राम रस पी, श्याम रस पी,
रगड़ रगड़ पी, चौबीस कलाक पी,
घोट घोट पी, ज़ोर लगाय पी,
पी रे यार पी...।

साज व भक्तों की प्रेमोन्मत्त स्वर लहरी से राम रस की मधुर मस्ती भवन में उमड़ पड़ी है। श्रोतागण झूम उठे हैं। थोड़ी देर यह रंग जमा रहता है।

स्वामीजी– पीना है तो राम रस पीयें। यदि हमनें महापुरूषोंका संग कर उनके सान्निध्यमें श्रेष्ठ कर्म करते हुए, सेवा करते हुए अपना

हृदय पवित्र बनाया तो **ईश्वर हमसे दूर नहीं रहेगा। वह दूर है ही नहीं। मगर हमारे ही हृदय की अशुद्धता के कारण हम उससे अपने आप को दूर पाते हैं।** इसलिये हम महापुरुषों के संग में रहें, उनके मार्गदर्शन में श्रेष्ठ कर्म करें। उससे हमारे हृदय की कलुषिता धुलेगी, हृदय पवित्र होगा और तत्त्वज्ञ महापुरुषकी कृपा होगी तो हम अपने आपको जान लेंगे और सभी दुःखों से पार हो जाएंगे।

ॐ ॐ ॐ

पूरे जगत के कार्य कोई, भी कभी नहीं कर सका।
शीतोष्ण से सुख दुःख से, कोई भला क्या तर सका॥
निस्संग हो, निश्चिन्त हो नाता सभी से तोड़ दे।
करता भले रह देर से ममता अहंता छोड़ दे॥

ॐ

दीपावली कैसे मनाएँ ?

दीपावली (दूसरा दिन)
२३-१०-७६
शनिवार

लोगों में आज सर्वत्र दीपावली की खुशी नजर आ रही है। कई नये-पुराने लोग आज स्वामीजी के दर्शन करने आए हुए हैं। स्वामीजी के सम्मुख मिठाईयों के कई पैकेट फूलों के हार एवं अन्य भेंट सामग्री भक्तों को काफी कुछ दे चुकने के बाद भी पड़ी हुई है।

स्वामीजी – आप लोग तो दीपावली मना रहे हैं। देखो, नये नये कपड़े पहने हैं, और हम तो देखो...वही धुली सफेद चादर और बस......! हम कैसे दीपावली मनाएँ ? (विनोदपूर्वक) हमें भी बताओ जरा!

सभी स्वामीजी की ओर मुस्कुराते हुए देख रहे हैं। थोड़ी देर भवन में शांति रहती है, फिर स्वामीजी स्वयं ही बोल पड़ते हैं –

स्वामीजी – चलो, आप नहीं बताते तो हम ही बता देते हैं। संतों को तो साल में एक बार नहीं, हमेशा ही दीपावली होती है। उनकी तो हर श्वास में प्रसन्नता रहती है, इसलिये अलग से किसी एक दिन दीपावली मनाने की जरूरत नहीं पड़ती। क्यों, कैसा......?

और स्वामीजी हँस पडते हैं। साथ ही सभी भक्तगण भी हँस पड़ते हैं।

कुछ दिन यों ही सोचते–सोचते बीत गए। फिर उसने सोचा कि कुछ गाने लिखूँ। लेकिन गाने लिखना ठीक नहीं, गानों की बजाय तो भजन लिखना ठीक रहेगा। वह भजन लिखने बैठा, लेकिन उसी समय उसे ध्यान आया कि हर बुधवार व रविवार को सत्संग होता है, उसमें जाकर सत्संग की बातें लिखूँगा। लेकिन सत्संग की बातें भी वह लिख नहीं पाया। क्योंकि सत्संग की बातें तो 'सहजवाणी' पुस्तक में छप ही जाती है। इस प्रकार महीने पर महीने बीतते गए। फिर उसे विचार आया कि स्कूल के नोट्स लिखें। लेकिन अब तो तारीख वाले महीनों के कई पृष्ठ पीछे छूट गए थे, बीच में से डायरी को शुरू करना भी उसे अच्छा नहीं लगा। अब क्या करें...? और इसी प्रकार विचार विचार में वर्ष बीत गया। नये साल की नई डायरियाँ आने लगी। पुरानी को कौन पूछे? आखिर रमेश को वह रद्दी के भाव बेचनी पड़ी। वही डायरी जो भगवान की बातें लिखी जाकर पूजा के कमरे में पूजी जा सकती थी वही फिर भड़भूंजे के पास चाट–पकौड़ी खाने में उपयोग होने लगी।

हम सोचते होंगे, रमेश मूर्ख था जो उसने डायरी का कोई उपयोग नहीं किया। लेकिन हम जरा हमारी ओर भी देखें। हमें जो मनुष्यजीवन–रूपी दुर्लभ डायरी मिली है, उसका हम उपयोग करते हैं क्या? एक अक्षर भी ऐसा उसमें हम लिखते हैं क्या कि जो हमें इस भव–बन्धन से तारने का काम करे? **अज्ञानी के रूप में जन्म लिया और अज्ञानी बने हुए ही यह शरीर छोड़ देंगे क्या?** जरा हम विचारें गंभीरता से। हमने जीव होकर जन्म लिया शिव रूप में अपने आपको पहचानने के लिये, परन्तु बिना अपने शिवत्व–अपने शाश्वत् चैतन्य को पहचाने ही यह जीवन व्यर्थ खो देंगे क्या? यदि ऐसा ही हम सोचकर चलते हैं, तो लानत है हमारी बुद्धि पर कि हम मनुष्य होकर भी विवेक से काम नहीं करते। यदि गाय–भेंस, चूहे–

बिल्ली आदि प्राणी भूल करें, अपना जीवन यों ही खो दें तो उन्हें कुछ भी पाप नहीं, क्योंकि वे तो योनियाँ ही ऐसी हैं। उनके पास समझ ही ऐसी है। उनके लिये डायरी का बिगड़ना–सुधरना सब समान है।

हम कहेंगे, हमने तो बहुत किया है। खूब कमाया है। बच्चोंको पढ़ा–लिखाकर बड़ा किया है। सब के लिये रहने, खाने–पीने की सब सुविधाएँ कर दी हैं। जीवन भर कोई आराम नहीं पाया। परन्तु यह सब क्या 'करने' में आता है? अपने काम के वश होकर हमने कुटुम्ब खड़ा किया और अपने मोहवश उसे पाला पोसा। यह सब तो अपने स्वार्थवश किया है। यह हमारे पुण्य कर्मों में नहीं आता।

कभी अपने कुटुम्ब के अतिरिक्त भी किसी से हमने निःस्वार्थ प्रेम किया है? अपने जीवन का थोड़ा सा भी समय ईश्वर चिन्तन व ध्यान–भजन में या शुभ कर्मों को करने में लगाकर अपनी जीवन–डायरी के श्रेष्ठ पृष्ठ लिखने की चेष्टा की है?

हमने दुकान पर बैठ कर ग्राहक को सदैव ग्राहक ही समझा है। उसमें भी हमारा ही चैतन्य आत्मदेव है यह समझ कर कभी हमने व्यवहार किया है? दुकान पर ग्राहक आया और हमने आर्डर दे दिया लाओ कोकाकोला, लाओ फेन्टा और अन्दर का भाव उसके उल्टे उस्तरे से बाल उतारने (ठगने) का है, तो यह पाप व्यवहार बन जाता है और हृदय में यदि उसके प्रति सरल–निर्दोष सेवा का भाव है, उसमें भी अपना ही सच्चिदानन्द परमात्मदेव दृष्टि आता है, तो यह भक्ति बन जाता है।

कल हमेंमें से कईयों ने उस विशाल डेढ मीटर जंगली विष धर के हाथ लगाया था, किन्तु किसी को उसने नहीं काटा। क्यों नहीं

काटा ? क्योंकि हमारे भाव शुद्ध थे। मन में उसके प्रति शत्रुभाव नहीं था। अपने शुद्ध, सरल भावों के सूक्ष्म स्पन्दनों का प्रभाव उस के चित्त पर पड़ा तो वह भी द्वेषभाव भूल गया और उसने हमसे मित्रवत् व्यवहार किया। वह चुपचाप पडा रहा। एक फुत्कार भी तो उसने नहीं मारी !

देवों के देव महादेव के हाथों एवं गले में सर्प लिपटे रहते हैं। शिवजी का यह रूप बताता है कि हममें यदि द्वेषभाव नहीं है, तो भयंकर विषधर भी हमारे अभूषण बन जाते हैं। भगवान श्री विष्णु के लिये वही विषधर शैया का काम करता है। यह सब इसलिये होता है, क्यों कि उसमें भी वही चेतन तत्त्व विराजमान है जो हम में है। हम उसे पहचानने की चेष्टा करें। सर्वत्र उसी का अनुभव करें। ऐसा कोई व्यवहार न करें जिससे किसी को कष्ट हो। सबके बारे में शुभ चिन्तन करें–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत ॥

यह हमारे देश की भाषा है...नहीं नहीं, भाषा नहीं स्वभाव है।

प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व उठे और अपने दोनों हाथों को देखते हुए यह श्लोक बोलें–

कराग्रे वसते लक्ष्मी, करमध्ये सरस्वती,
करमूले तू गोविन्द, प्रभाते कर दर्शनम् ।

अपना जीवन दम्भ रहित, सरल व सेवामय बनाएँ। मैं जब छोटा था तो रात्रि को पिताजी के पाँव दबाता था। पाँव दबाते–दबाते उनको नींद आ जाती थी। कई बार प्यास लगने पर भी मैं उठता नहीं था, क्यों कि उठने पर कहीं उनकी नींद न उचट जाय इस बात

का ख्याल रखता था। कभी–कभी भोजन भी नहीं कर पाता था। जब रात को वे अचानक जगते तो मुझ से पूछते–'बेटा ! तुमने रोटी-वोटी खाई या तब से ऐसे ही बैठे हो ?' मैं कहता–'नहीं।' तो वे कहते– 'अरे बेटा, तब से भूखे ही बैठे हो ? जाओ, रोटी खा लो और सो जाओ।'...अब आप सोचिये, मुझे क्या उनसे आशीर्वाद मांगने की आवश्यकता थी ? वह तो न चाहते हुए भी मिलता ही है। एक दिन उन्होंने कहा "जाओ बेटा ! तुम्हारा दुनियाँ में नाम होगा।"

तो अपना जीवन सरल–निर्दोष बनाओ। कहावत है सादा जीवन उच्च विचार। 'simple living and high thinking.' किसी की भी बात सुनकर तुरन्त उस पर निर्णय मत लो। पहले उसको अपने हृदय में तोलो कि यह बात सची हो सकती है या नहीं, फिर उस पर अमल करो। अन्यथा राग–द्वेष के शिकार बन जाओगे और पति–पत्नी, सास–बहू, देवर–भाभी, देवरानी, जेठानी और भाई–भाई के झगड़े घर में खड़े हो जाएंगे। घर नर्क बन जायेगा और अशान्ति हाथ लगेगी। सदैव धैर्य से काम लें। सोच समझकर हर व्यवहार करें। इतना चञ्चल भी मत बनो कि सारी शक्ति उसी में व्यय हो जाय और इतना गंभीर भी मत बनो कि मन रूपी पुष्प खिले ही नहीं और मुर्झा जाए। जीवन में गंभीरता भी रहें और आवश्यकतानुसार मनोरंजन भी। सदैव प्रसन्न रहें। **प्रसन्न रहना ही परमात्मा की सबसे बडी भक्ति है**। जीवन जीना ही हो तो ऐसा जीवन जिएँ जिसकी सुगन्ध अपने सम्पर्क में आने वालों को प्रसन्न बनाती रहें। कहा भी है किसीने—

'गुलाब बनकर महक, तुझे जमाना जाने।'

लेकिन, (विनोदपूर्वक) हम तो दीपावली पैसों में मानते हैं। सांसारिक विषयों की पूर्ति में मानते हैं। गाते भी है—

तेरी जेब रहे ना खाली, तेरी रोज रहे दीवाली ।
तू हरदम मौज उडाये, कभी न दुःख पाए....
ओ बाबू एक पैसा दे दे ॥

जो दीवाली पैसों पर निर्भर है, जो दीवाली सँासारिक तुच्छ व नश्वर भोगों पर निर्भर है, जो दीवाली हर वर्ष बाहर से थोपी जाती है वह दीवाली कभी स्थायी नहीं रह सकती । वह दीवाली हर वर्ष मनानी पड़ेगी और मनाए जाने पर भी स्थायी सुख नहीं दे सकेगी । ऐसी दीवाली हर वर्ष मनाओ सुख की लालसा में, परन्तु कभी वह सच्चा सुख नहीं मिलता है और जीवन यों ही पूरा हो जाता है । डायरी के ३६५ पृष्ठ, जीवन के सभी श्वास यों ही खाली चले जाएंगे-एक एक करके और भोग हमसे बिछुड़ जाएंगे या भोगों को भोगने की इन्द्रियाँ शिथिल हो जायेगी तब हमको आठ-आठ आँसू रोना पड़ेगा । फिर नई डायरी के लिये ९ महीने किसी के गर्भ में उल्टा लटकना पड़ेगा और वह गर्भ किसका होगा-मनुष्य का होगा कि पशु-पक्षियोंका, यह कौन जानें ? इसलिये हम चेतें-दीवाली के बाहरी प्रकाश में सुख ढूँढना छोड़ें और अपने भीतर के प्रकाश की ओर देखें

'चमक-दमक पर मिटा हुआ है,
ओ बागबां ! तुझे क्या हुआ है ?
फरेबे शबनम पर मुब्तला हुआ है,
चमन की अब तक खबर नहीं है ।'

हम अपने भीतर देखें । हमारा आत्मदेव स्वयं आनन्द-स्वरूप है । उसे किसी बाहर के आनन्द की आवश्यकता नहीं है, बल्कि वही बाहर के आनन्दों का आदि स्रोत है । उसे किसी बाहर के प्रकाश की आवश्यकता नहीं है, वह स्वयं प्रकाशस्वरूप है । उसे देखने के लिये, उसे जानने के लिये किसी बाहर के क्षुद्र प्रकाश की आवश्यकता नहीं है । बल्कि उसीसे सब प्रकाशित है । उपनिषदों के ऋषि कहते हैं –

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १० ॥

— 'कठोपनिषद'

"वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होता है न चन्द्रमा, न तारागण न बिजलियाँ ही, फिर इस लौकिक अग्नि की तो बात ही क्या है ? उसकी सत्ता से ही सूर्य चन्द्र तारागण आदि प्रकाशित होते हैं । उसी के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत प्रकाशित होता है ।"

फिर भी हम अपने आनन्द के लिये, अपने प्रकाश के लिये बाहर की दीवाली का आश्रय लेते हैं । आश्चर्य है ।

"इन्सान की बदबख्ती अन्दाज से बाहर है,
कम्बख्त खुदा होकर बन्दा नजर आता है ।"

अपने आत्मदेव को न जानने के कारण ही हम अशान्त हैं और नकली मिट्टी के दीप जलाकर बालकों की दीवाली मनाते हैं । जो बिल्कुल नहीं जानते, जो कुछ भी नहीं करते उनके लिये तो यह ठीक है, मगर जिनको समझ आ गई है उन्हें इससे आगे बढना चाहिये । हमारा यह आत्मदेव राम वस्तुतः अयोध्या में नहीं है । जब तक वह जंगल-जंगल भटकता रहेगा, अपनी स्थिति छोड़कर बाह्य विषयों में सुख ढूँढ़ता रहेगा, शांति नहीं होगी । उसे अपनी अयोध्या में लौटाना होगा । हमें अपने आपमें, अपने परम पद में लौटना होगा । तभी शांति होगी, तभी सच्ची दीवाली का सुख अनुभव कर सकेंगे । हम अयोध्या में लौट जाएं, अपने आत्मस्वरूप को पहचान लें, अपनी सारी वृत्तियों को बाह्य विषयों से हटाकर आत्मकेन्द्रित कर लें-यानि आत्मसाक्षात्कार कर

लें। फिर बार बार हर वर्ष दीवाली तो क्या हमारी हर श्वास में दीपा-वली का आनन्द मुखरित हो उठेगा।

ॐ ॐ ॐ !!!

"अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयं कोषः स्वर्गोज्योतिषावृतः॥"

उस नगरी के आठ चक्र हैं और नौ द्वार हैं। प्रत्येक द्वार पर देवता पहरा देते हैं। वह अयोध्या नगरी है – मानव का शरीर। उसी के भीतर स्वर्ण की भाँति चमकता हुआ एक कोश है, उसके भीतर अनन्त ज्योति में लिपटा हुआ वह स्वर्ग रहता है। वही शाश्वत् सुख का–आनन्द का भण्डार है।

**निस्सार यह संसार दुःख–भण्डार माया जाल है।
ऐसा यहाँ पर कौन है, खाता जिसे नहीं काल है॥
फिर मित्र सुत दारादि में, क्यों व्यर्थ ही संसक्त हो।
यदि इष्ट निज कल्याण है, मत भोग में आसक्त हो॥**

ॐ

यह सब झूठा संसार है....।

३–११–७६
बुधवार

रात्रि के ८बज रहे हैं। आश्रम के प्राङ्गण में बालकों की आमने-सामने पंक्तियाँ बैठी हुई है। भोजन परोसा जा रहा है। स्वामीजी लॅान में टहल रहे हैं। आश्रम में बालकों का ध्यान–शिविर लगा हुआ है। अभी–अभी बालक ध्यान कर के उठे हैं और प्रसाद पाने की तैयारी में बैठे हुए हैं। एक कार आश्रम में आ कर रुकी उस में से दो तीन समाज के प्रतिष्ठित सज्जन उतरे और स्वामीजी को दण्डवत् प्रणाम किया। आज शहर में स्वामीजी का सत्संग का प्रोग्राम है उस के लिये ये पूज्यश्री को कार लेकर लेने के लिये आये हैं।

दो सेवाधारी आए और स्वामीजी को प्रणाम कर के बोले – अभी भी २ बालक ध्यान से नहीं उठ रहे हैं। घंटे भर से अधिक समय हो गया है। उन को ध्यान से जगाने का काफी प्रयास किया है, फिर भी...।

स्वामीजी ने कहा–"चलो, मैं देखता हूँ।"

स्वामीजी के साथ सभी उन बालकों के पास आए। दोनों बालक आँख मूंदे ध्यानस्थ बैठे हैं। अभी उन्हें बाहर की दुनिया का कोई भान नहीं है।

स्वामीजीने स्नेह से उन के सिर पर हाथ फिराया और उनका नाम लेकर धीरे धीरे पुकारा। थोडी ही देर में दोनों ने आँखे खोली और खड़े होकर स्वामीजी के पैरों में गिर पड़े। स्वामीजी उनकी साधना में निष्ठा से मन ही मन प्रसन्न थे फिर भी उनकी परीक्षा लेने के भाव से बोले—

"तुम दोनों को कोई भान है कि नहीं समय का? समय पर ध्यान से उठकर भोजन के लिये बैठ जाना चाहिये था। १० मिनट हो गए भोजन का बिगुल बजे हुए और तुम अभी यहीं बैठे हो? यही तुम्हारा अनुशासन है?"

थोडी देर में सब ने देखा कि दोनों बालकों की आँखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी। एक बालक अवरुद्ध एवं गद्‌गद् कंठ से बोला—

"मुझे नहीं करना है भोजन। मुझे अनुशासन आदि कुछ नहीं चाहिये। यह सब झूठा संसार है। मुझे इस संसार में नहीं रहना। क्यों आप सबने मेरे को ध्यान से उठाया। मुझे मेरे ध्यान में लीन होने दो और आप सब अपना काम करो। मुझे मेरे हाल पर छोड दो कृपा करके...।"

कहकर वह बालक पुनः स्वामीजी के पैरों में गिर पड़ा। उस के कहने के भाव से लग रहा है कि वह ध्यान में इतना लीन हो गया था कि उसे बाहर की दुनिया का कोई भान नहीं रहा था। उसे यह भी भान नहीं रहा कि मैं कौन हूँ, कौन मेरे माँ–बाप हैं और मुझे यहाँ क्या करना है। अभी उसे भोजन में भी सुख नहीं लग रहा है। इससे साफ जाहिर है कि उस को ध्यान में कोई ऐसा आनन्द आ रहा था कि जो इन ऐन्द्रिक विषयों से नहीं आता है। अहा! बन्दर जैसे चञ्चल बालक भी महापुरुषों की कृपा से आत्मोन्नति के मार्ग पर चल पड़ते हैं। उन्हें सब संसार मिथ्या लगता है और

हम ८० – ८०, १०० – १०० वर्ष के बूढे हो जाएं, चाहे हमारे पैर सदैव कब्र में लटके रहें, फिर भी हमें यह संसार सच्चा लगता है; हमारा इससे मोह छूटता नहीं है। जिस अपने आनन्दस्वरूप आत्मा को जो सदैव शाश्वत् है हमें जानना है, उसे हम जानने की तरफ ध्यान नहीं देते व सांसारिक पदार्थों की तरफ जो नश्वर है दौड़ते हैं; और यह ११ वर्ष का बालक घंटा भर ध्यान करके कहता है कि संसार मिथ्या है, मुझे यह संसार नहीं चाहिये! धन्य है महापुरुषों की करुणा – कृपा!

स्वामीजी उस बालक को हाथा से पकड़ कर स्नेह से खड़ा करते हैं। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही है। यह अश्रुधारा दुःख की नहीं है। यह धारा आत्मिक आनन्द की धारा है। यह धारा मानो कह रही है कि मैं ऐसे आनन्द के सागर में से आ रही हूँ, जिसकी कद्र तुम्हारे स्थूल जगत में नहीं है। तुम लोग क्षणिक सुखों में भटकते रहो, मगर वहाँ तो शाश्वत आनन्द है, जो कभी क्षय नहीं होता, कभी घटता नहीं। **तुमको यदि वह आनन्द चाहिये तो गहरे ध्यान में उतर जाओ। यदि स्वयं नहीं उतर पाते हो तो किन्हीं अनुभवी महापुरुषों का सहारा लेकर उतरो, मगर उतरो अवश्य।** बकरे की मां कब तक खैर मनाएगी? आखिर तो यह ऐश्वर्य तुम्हारा भंग होना ही है। आखिर तो ये गाडियाँ, ये गगनचुम्बी महल, ये मखमली बिस्तरे, फ्रीज व सोफासेट काल के ग्रास बनने ही हैं। आखिर तो यह यौवन जर्जर बुढ़ापे में परिवर्तित होना ही है, आखिर तो यह पंचमहाभूतों का बना ३॥ हाथ का पुतला पंच-महाभूतों में मिलना ही है। फिर तुम किसलिये इतनी बेतहाशा दौड़–धूप में लगे हुए हो और कहते हो मरने की भी फुर्सत नहीं। हम कहाँ भटक रहे हैं? और यह बालक ऐसे आनन्द के समुद्र में अभी से इस उम्रमें गोता लगाता है।

वालक खड़ा होकर एक टक स्वामीजी की ओर देख रहा है।

स्वामीजी (मुस्कुराते हुए) – तो तुम्हें यह संसार नहीं चाहिये ?

वालक – नहीं चाहिये। बिल्कुक नहीं चाहिये। यह सब झूठा है।

स्वामीजी – फिर क्या चाहिये तुम्हें ?

वालक – मुझे ज्ञान चाहिये...।

सभी विस्मित होकर कभी स्वामीजी की ओर देखते हैं कभी उस बालक की ओर। ऐसा लग रहा है जैसे हम तो इस दुनिया में खड़े हैं, मगर यह बालक जैसे किसी अन्य लोक से यहाँ उतरा है। उस लोक का नशा वह भूला नहीं है। इसीलिये उसकी बातें सबको विचित्र लग रही है।

स्वामीजी–अच्छा, तुम्हारे ध्यान करने की इच्छा है तो जाओ उस सामने वाली कुटिया में और ध्यान करो। तुम अभी भोजन मत करो। (एक सेवा धारी से) उसको रात को सोते समय कुछ फल व दूध दे देना !

इतना कहकर स्वामीजी कार में आए हुए सज्जनों को एक तरफ ले जाते हैं और उनसे बातचीत करते हैं।

एक सज्जन–यह सब तो बड़ा विचित्र हैं, जो हमने देखा है !

स्वामीजी–आप लोगों के भाग्य हैं जो ऐसा दृष्य आपको देखने को मिला है। वास्तव में बात क्या है कि व्यक्ति जब गहरे ध्यान में उतरता है तो अपना जीवभाव भूल जाता है और देह व इन्द्रियों से ऊपर उठ जाता है। उस समय मन एकाग्र हो जाता है और तब उसे ऐसा आनन्द आता है जिसकी तुलना में दुनिया के सब आनन्द फीके

है। यह भी ध्यान की बहुत ऊँची भूमिका नहीं है। मगर उस भूमिका तक पहुँचने में भी साधक को वर्षों लग जाते हैं और यदि गुरू समर्थ नहीं है तो उसके कभी भी पतन होने की बहुत सम्भावना रहती है।

जो अपने को अधिक मिटा सकता है, अपना अहंकार कम कर सकता है, वह उस मार्ग में अति शीघ्र आगे बढ़ जाता है। मगर अपने आपको मिटाना इतना सरल नहीं है। 'मैंने अपने आपको मिटा दिया है' इस प्रकार का भाव रहना भी सूक्ष्म अहंकार का ही रूप है और यह अधिक खतरनाक है। 'मैंने सब कुछ छोड़ दिया है, मुझमें बहुत वैराग्य है, मैंने अपना मन मार दिया है, मैं संत बन गया हूँ' इस अहंकार की घाटी में आकर कई साधक रुक जाते हैं, इसको पार नहीं कर पाते। इसीलिये समर्थ, ब्रह्मनिष्ठ गुरु की आवश्यकता बतलाई गई है। गुरु की कृपा हो तो हमें मिटने में देरी नहीं लगती और हम मिट गए तो फिर आत्मसाक्षात्कार में समय नहीं लगता। इसलिये श्रद्धा और समर्पण पर जोर दिया गया है।...अच्छा चलो, हम लोगों को देरी हो गई है।

स्वामीजी कार की तरफ उन सज्जनों के साथ बढते हैं। लेखक एक ओर खड़ा है। तभी वही बालक आ कर धीरे–धीरे उससे कहने लगा—

"मैं उधर कुटिया में बैठा था तो थोडी देर बाद मुझे स्वामीजी के ध्यान में दर्शन हुए। उन्होंने कहा 'बच्चा! तुम कितनी देर ध्यान में बैठे रहोगे ? आज इतना बहुत है। अब जाओ और सुबह जल्दी उठकर ध्यान में बैठना। यदि तुम्हारी इच्छा है आत्मसाक्षात्कार की और गुरु की आज्ञा में श्रद्धापूर्वक चलते रहे तो बाकी मैं सब संभाल

लूंगा। अब तुम उठो।' इसलिये मैं उठकर आ गया हूँ। सुबह आप मुझे बाकी सबसे जल्दी जगाना, ताकि मैं जल्दी ध्यान में बैठ जाउँ।''

लेखक उसके भोले चेहरे की ओर देख रहा है और मन ही मन कहता है, धन्य हैं ऐसे सद्गुरू और 'धन्य हैं ऐसे श्रद्धावान् साधक-बालक !'

हम सब पर उस सच्चिदानन्द परमात्मा की कृपा ढुलें। हम भी उस प्रियतम के प्यार में डूब जाएं।

ॐ ॐ ॐ

देहादि करते कार्य हैं, आत्मा सदा निर्लेप है।
यह ज्ञान सम्यक् होय जब, होता न फिर विक्षेप है॥
मन इन्द्रियाँ करती रहें, अपना न कुछ भी स्वार्थ है।
जो आ गया सो कर लिया, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

卐 卐

निष्ठा रखूँ निष्कर्म में, या कर्म में निष्ठा धरूँ।
यह प्रश्न देहासक्त का है. क्या करूं क्या नहीं करूँ॥
निष्कर्म से नहीं हानि है, नहीं कर्म में कुछ अर्थ है।
अभिमान दोनों त्याग दे, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

पाद - पश्चिमोत्तानासन

दोनों हाथों से पैरों के अंगूठे पकड़कर झुकते हुए सिर को दोनों घुटनों से मिलाने का प्रयास करें। घुटने जमीन पर सीधे रहें। प्रारंभ में घुटने जमीन पर न टिके तो कोई हर्ज नहीं। सहज अभ्यास से यह आसन सिद्ध हो जायगा।

० आसन से लाभ ०

इस आसन से नाड़ियों की विशेष शुद्धि होकर कार्यक्षमता बढ़ती है और शरीर की कई बीमारियाँ दूर होती हैं। बदहज्मी–कब्जी जैसे पेट के सभी रोग, सर्दी–जुखाम, कफ गिरना, कमर का दर्द, हिचकी, सफेद कोढ़, पेशाब की बीमारियाँ, स्वप्न–दोष, वीर्य–विकार, अपेन्डिक्स, साईटिका (Scitica) नलों की सूजन, पाण्डुरोग (पीलिया) अनिद्रा, दमा, खट्टी डकारें, ज्ञानतंतुओं की कमजोरी, गर्भाशय के रोग, मासिकधर्म की अनियमितता व अन्य तकलीफें, नपुंसकता, रक्त–विकार, ठिंगनापन व अन्य कई प्रकार का बीमारियाँ यह आसन करने से दूर होती हैं।

आरम्भ में यह आसन आधा मिनिट से प्रारंभ करके प्रति–दिन थोड़ा–थोड़ा समय बढ़ाते हुए १५ मिनिट तक कर सकते हैं। पहले २–३ दिन तकलीफ होती है, फिर सरल हो जाता है।

इस आसन से शरीर का कद लम्बा होता है। यदि शरीर में मोटापन है तो वह दूर होता है और यदि दुबलापन है तो वह दुबला-पन दूर होकर शरीर सामान्य तंदुरुस्त अवस्था में आ जाता है।

सूचना :—जलनेति एवं अन्य यौगिक क्रियाएं समझनी आवश्यक समझें तो आश्रम से प्रत्यक्ष सम्पर्क साधें।

ॐ

अनेकत्व में छिपे एकत्व को पहचानें

७–१०–७६
गुरुवार

मेहसाणा के डाक–बंगले में पूज्य स्वामीजी के सम्मुख इधर के कुछ चुने हुए ऑफिसर वर्ग के लोग बैठे हैं। स्वामीजी को हारीज में इधर दूध डेरी के उद्घाटन पर दो अमृतवचन आशीर्वाद रूप में बोलने हेतु बुलाया हुआ है। यहाँ बीच में आधे घंटे के लिये स्वामीजी का प्रोग्राम डाक–बंगले पर रखा हुआ है। लोगों ने जिज्ञासु भाव से दो प्रश्न भी किये हैं। उन्हीं के उत्तरस्वरूप स्वामीजी इस थोड़े से समय में कुछ वचनामृत का पान करा रहे हैं—

स्वामीजी—

आत्म तत्व को न जानने के कारण हम को सुख दुःख की चोटें लगती हैं। हम जीव–भाव में विचरते हैं। माया के तीन गुणों सत, रज और तम के कारण हमें अनेकत्व नजर आता है और हम अपने एकत्व–अपने आनन्दमय चेतन तत्व–अपने आत्म-स्वरूप को विस्मरण कर जाते हैं। अनेकत्व में व्यवहार करते समय उसके मूल में छिपे एकत्व को न जानने के कारण और अनेकत्व वाले व्यवहार में ही सत्य बुद्धि करने के कारण जो कि वास्तव में सत्य नहीं है हम अपने आत्म स्वरूप से भटक जाते हैं और दुःखी होते हैं। माया के इन तीन गुणों से, ऊपर उठे बिना मनुष्य शान्ति नहीं पा सकता। **मैं शरीर हूँ और शरीर के सारे व्यवहार ही**

सत्य हैं—इस देहभाव-इस जीव भाव से ऊपर उठे बिना और अपने आत्मभाव में स्थित हुए बिना कहीं भी मनुष्य को शांति नहीं मिल सकती । इसीलिये भगवान श्री कृष्ण ने गीतामें अर्जुन से कहा है—

'द्वंद्वातीतो भवार्जुन !'

'हे अर्जुन ! द्वैतभाव, माया में प्रतीत होने वाली इस विभिन्नता से, उसके तीन गुणों से तुम ऊपर उठ जाओ। वहाँ हर्ष, शोक आदि की पहुँच नहीं है । वहाँ परम शांति है । **उस तत्त्व को तुम जान लो, फिर तुम कुछ भी करो, तुम्हें कोई पाप-पुण्य का लेप नहीं लगेगा ।** क्योंकि इस अवस्था में ऊपर से कोई भी व्यवहार करें, पर अन्दर से यह ठोस अनुभूति होती है कि जगत का यह सब व्यवहार तो स्वप्नवत् है, हकीकत् में न कुछ बनता है, न कुछ बिगड़ता है ।

इसीलिये महर्षि वसिष्ठ भगवान राम को कहते हैं—

"हे रामजी ! युद्ध का मौका हो तो दाँत भींचकर (कमर कस कर) शत्रुओं से युद्ध करें और हँसने का अवसर हो तो दिल खोल कर हँसें, मगर अन्दर से यह दृढ़ रहे कि सब मिथ्या है, न कहीं कुछ बना है न मिटा है ।"

यह जगत भी उतना ही मिथ्या है जितना सपने का जगत मिथ्या होता है । सपने में हम ट्रेन देखते हैं, यात्री देखते हैं, कुली देखते हैं, भिखमंगे देखते हैं, अपने-पराए देखते हैं और कई शहर भी देखते हैं । हम एक शहर से दूसरे शहर गए ऐसा भी उसमें सत्य लगता है । यदि कोई कहे 'कि अरे, तुम कहीं नहीं गए । ये ट्रेन, ये यात्री, ये प्लेटफार्म, शहर आदि कुछ नहीं बने हैं, केवल भ्रम से

भास रहे हैं, तो हम उसकी बात मानेंगे क्या ? नहीं मानते । क्यों कि उस समय सपने में सब सत्य लगता प्रतीत होता है । परन्तु यदि ट्रेन के धक्के से या किसी के जगाने से हम जाग जाएं, तब ! तब हमें सपने का मिथ्यापन समझ में आ जाता है । फिर सपने में हमें चोट लगी हो, दुःख पहुँचा हो या सुख मिला हो सब हमारे लिये व्यर्थ सिद्ध हो जाता है । जागने पर सपने के सारे सुख-दुःखों से भले वे कितने ही भारी हों हम परे हो जाते हैं । वे हमें विचलित नहीं कर सकते, क्यों कि उसमें से हमारी सत्यबुद्धि हट जाती है, उसकी ठोसता की पोल खुल जाती है, इसलिये उस के प्रभाव से हम अछूते बन जाते हैं, परे हो जाते हैं ।

जिस प्रकार वह सपने का जगत जागने पर मिथ्या लगता है उसी प्रकार यह जाग्रत का जगत अपने आत्म तत्त्व को जानने पर मिथ्या लगता है । जिसकी सत्ता लेकर यह जगत बना अथवा भासमान हो रहा है उस सत्ता (आत्मा) को जान ले तो मनुष्य 'जीवन-मुक्त' हो जाता है । निष्काम कर्म करने से, साधन-भजन, त्याग-तपस्या, जप-व्रत आदि करने से अन्तःकरण में ऐसे सात्विक विचार उठते हैं कि 'यह सब व्यवहार आदि करके भी आखिर क्या होगा ? आखिर हम कौन हैं और किसलिये यह सब हम कर रहे हैं ?' यानि आगे चलकर संसार का मिथ्यापन समझ में आता है और परमात्मा की सत्यता की ओर हमारी वृत्ति मुड़ती है । फिर हम योग का सहारा लेते हैं । राजयोग, भक्तियोग, लययोग, कर्मयोग, नादानुसंधान योग आदि इन सबका मूल उद्देश्य प्रकृति के प्रभाव से मुक्त करके हमको आत्माभिमुख बनाना ही है ।

एक लकड़ी का गट्ठर एक कंधे पर उठाकर कठियारा चल रहा है । जब कंधा थका जाता है, तब वह दूसरे कंधे पर उस गट्ठर को रख लेता है और कहता है 'अहा ! कुछ शान्ति मिली ।' लेकिन थोड़ी

दूर तक जाकर दूसरा कंधा भी उस गठर के भार से दुखने लगता है। फिर वह पहले वाले कंधे पर गट्ठर लेकर कहता है–'अहा ! कुछ शान्ति मिली।' **ऐसे ही संसार में हमारा दुःख परिवर्तित होता है तो हम सोचते हैं, शान्ति मिली। वस्तुतः वह शांति है ही नहीं। यही सारे सांसारिक सुखों की प्रकृति है। परम सुख मिलता नहीं। परम सुख तो उस अपने आत्मस्वरूप में ही है।** उस स्वरूप की तरफ बढने में ही योग का सहारा लिया जाता है।

जिसको सम दर्शन होता है, इस जगत के दिखने वाले अनेकत्व में छिपे हुए अपने ही चेतन आत्मस्वरूप रूपी एकत्व का दर्शन होता है उसे भय–शोक आदि सन्ताप नहीं होते। हम तो कुछ उपाधियाँ लेकर, नाम, जाति, पद आदि के मद में चूर होकर, इस शरीर को ही 'मैं' मानकर चलते हैं। इसलिये जरा सी भी अपने इस माने हुए अहंकार को चोट लगती है तो हम फुफकार उठते हैं, क्रोध में आ जाते हैं। इस शरीर के अपमान को अपना अपमान मानकर अशान्त हो उठते हैं और व्यर्थ में दुःखी होते हैं। हम कहते तो हैं मेरा पैर, मेरा हाथ, मेरा सिर; मेरे माथे में दर्द हो रहा है या मेरे पैर में चोट लगी है, मगर व्यवहार 'मेरे' को 'मैं' मानकर करते हैं और अपने असली स्वरूप 'मैं' (आत्मा) को भूल जाते हैं।

अज्ञानजन्य अपने इस देहभाव-जीवभाव के कारण ही हम दुःखी होते हैं। यही देह भाव हमारे दुःख का मूल कारण है। जो विद्या इस भाव से हमको अपने आत्म भाव की ओर लेजाय, जो इस जीवभाव रूपी दुःख के बन्धन से मुक्ति की ओर ले जाय वही विद्या वास्तविक विद्या है।

'सा विद्या या विमुक्तये'

वही विद्या ब्रह्मविद्या है। **सब दुःखों से छूटने का यह ब्रह्मविद्या ही एक मात्र सहारा है। सच्चे संत इसी विद्या को पढाते हैं।** उन्हीं को यह विद्या आती है। बाकी धनोपार्जन की लौकिक विद्या, एक रुपये के दस या दस के सौ रुपये करने की बाह्य विद्या तो कोई भी पढा सकता है। **ब्रह्मविद्या हरकोई नहीं पढा सकता। यदि हर कोई पढाएगा तो उसका प्रभाव नहीं होगा। जिन के आचरण में यह उतरी है वे पढाएंगे तो उसका निश्चित अलौकिक लाभ होगा।** और यह संत ही कर सकते हैं। इसीलिये बड़े–बड़े राजा सम्पूर्ण लौकिक सुखों का त्याग करके अरण्यों में वास करने वाले इस ब्रह्मविद्या के अधिकारी ऋषी–महर्षियों के चरणों में जा बैठते थे। इसलिये कहा गया है कि **सब दुःखों से छूटना हो तो सन्तों का सान्निध्य करो और अपने आत्मदेव को जानो।**

ॐ ॐ ॐ !!!

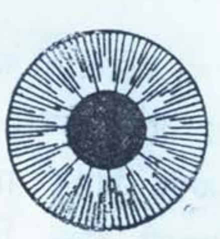

XXX सूक्तियाँ XXX

◦ ब्रह्म–दृष्टि को छोड़कर अन्य किसी भाव से किसी वस्तु को मत देखो । यदि ऐसा नहीं करोगे तो अन्याय और बुरा ही देखने में आएगा ।

◦ भय और संदेह से ही तुम अपने को मुसीबत में डालते हो। किसी बात से अस्थिर और चकित मत बनो। अज्ञानियों के वचनों से कभी भय मत करो।

◦ किसी भी प्रकार की कठिनाइयों के आगे दुःखित न होकर गम्भीरता पूर्वक उनका सामना करो । तभी तुम निःसन्देह विजय प्राप्त करोगे । तुम कहीं भी हतोत्साही होकर निराश न होओ।

◦ आपत्तियां पर्वत जैसी भले ही हों, सब कुछ भयावह और अन्धकार पूर्ण भले ही दीखें, पर जान लो यह सब माया है । डरो मत, यह भाग जाएगी, कुचलो इसे और यह लुप्त हो जायेगी और ठुकराओ यह मर जाती है ।

◦ करोडों दुःख रूपी कीटाणु तुम्हारे आस–पास क्यों न घूमते रहें, पर कुछ चिन्ता मत करो। जब तक तुम्हारा मन कमजोर नहीं होता, तब तक उनकी हिम्मत नहीं कि वे तुम पर हमला करें। यह एक बड़ा सत्य है कि बल ही जीवन है, दुर्बलता ही मृत्यु है ।

◦ जैसे सबको स्वप्न–कल्पित संसार झूठा होता है, उसमें शंका नहीं होती, वैसे ही ज्ञानी पुरुष को सम्पूर्ण जगत शंका रहित झूठा होता है ।

◦ संसारी दु;ख–सुख को खेल मात्र समझकर इनमें विचरो, क्योंकि यह सुख–दुःख तुम्हारे स्वरूप में नहीं है । परन्तु भ्रान्ति के कारण इनको तुमने अपने में मान रखा है ।

- या तो तुम जगत के प्रभु बनो, नही तो जगत तुम्हारे ऊपर प्रभुत्व जमा लेगा ।

- यह दृष्य संसार इन्द्रजाल की रचना के समान मिथ्या हैं । इस कारण इसमें मन लगाना अथवा इससे भयभीत होना, व्यर्थ है ।

- जिस पुरुष ने निंदा-स्तुति की तरफ देखना ही छोड़ दिया है, वह मुक्त-रूप ही है ।

ॐ ॐ ॐ